भूमिका

परमपुरुष भगवान्योगिराज श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द गोविन्द के उपदेशामृत श्रीमद्भगवद्गीता के किसी हिन्दी पद्यात्मक भाष्य का परिचय देना वैसा ही है जैसा कि शरद्पूर्णिमा के पूर्ण प्रकाशित चन्द्र की चन्द्रिका के चमत्कार में किसी तुच्छ नक्षत्रका उभर उभर कर टिमटिमाना, तथापि जिस प्रकार भगवान् भास्कर की पूजार्थ भक्त जन अपने भाव दिखाने के हेतु अन्यान्य सामिग्री के अतिरिक्त दीपक भी प्रदान किया करते हैं ठीक उसी भांति मैं भी अपने परममित्र श्रीयुत पण्डित रामसहाय जी वैद्य शास्त्री तथा लाला मुरारिलाल जी के अनुरोध द्वारा इस ग्रन्थ के निर्माण की आवश्यकता मात्र प्रकट करता हूं ॥

एक बार पण्डित राधेश्याम बरेली निवासी सनातनधर्म सभा मेरठ के मन्दिर में रामायण मनोहर नवीन ढङ्ग पर कथा से श्रोता परममुग्ध हुए । नवीन ढङ्गकी कथा का उत्तम प्रभाव देखकर मुझे भी यह उत्कण्ठा हुई कि मैं भी श्रीमद्भगवद्गीता का प्रचार ऐसे ही करूं । सरल हिन्दी के अतिरिक्त वेदान्त के मुख्य २ शब्द जैसे के तैसे सङ्कट कर रक्खे हैं जिस से हिन्दी पठित साधु महात्मा संन्यासी अथवा कर्मयोगीजन् नित्य प्रति पाठ कर संस्कृत ज्ञों की भांति अपने विचार और अनुभव से लाभ उठावें ॥

निज स्थान शहर मेरठ पौष शुक्ला २ }
मङ्गलवार सम्वत् १९८० वि० } प्रभुदयालु शर्मा

ओ३म्

भगवद्गीता

(ख्याल छन्द)

१-अध्याय ।

अर्जुन-विषाद-योग
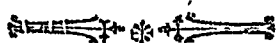
दोहा-अजर अमर भगवान को, सुमरूं बारंबार ।
गीता पर टीका करूं, करैं वो बेड़ा पार ॥

धृतराष्ट्र उवाच

दोहा-धर्म क्षेत्र कुरुक्षेत्र में, गये युद्ध के काज ।
मेरे सुत और पांडु के, करे क्या सञ्जय आज ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच

दोहा-राजा दुर्योधन अभी, देख पांडवी सैन ।
द्रोणाचारज पर गया, बोला ऐसे बैन ॥ २ ॥

छं०-पांडव सैना को देखो तो, आचार्य बड़ी यह भारी है ।
यह शिष्य तुम्हारा बुद्धिमान, और द्रुपदराज औतारी है ॥३॥
जो इस सेना में शूर भीम, अर्जुन की सम बलधारी है ।
हैं युद्ध करन में कुशल बड़े, और धनुष बाण संभारी है ॥
युयुधान बिराट् इत्यादि हैं, महारथी द्रुपद जयकारी है ॥४॥
इस धृष्टकेतु और चेकितान में, भी हर इक अधिकारी है ।

यों काशिराज बलवान महा, पुरुजित की महिमा न्यारी है।
नरश्रेष्ठ, शैब्य है कुन्तिभोज, रण में तन प्राण बिदारी है ॥५॥
बलवान महाधीरज वाला, और पराक्रमी भय हारी है।
इसको कहते हैं युधामन्यु, संग्राम बीच बधकारी है ॥
द्रौपदी सुभद्रा बड़ी सती, कीरति इनकी विस्तारी है।
हैं महारथी इनके बेटे, रणदेवी तक बलिहारी है ॥ ६ ॥

दोहा—अब मैं अपनी सैन के, वरनन मन दृढ नाथ।
ध्यान करो द्विजवर इधर, कहूं जोड़ कर हाथ ॥७॥

भीष्मकर्ण और कृपाचार्य संग्राम जीतने वाले हैं।
भूरिश्रवा अश्वत्थामा, विकर्ण ये करते पाले हैं ॥ ८ ॥
और बहुत से शूरों ने भी, मम प्राण मुझे दे डाले हैं।
नाना शस्त्र चलाते हैं, सब रण को देखे भाले हैं ॥ ९ ॥
भीषम से रक्षित मम सेना, इस कारण रण को टाले हैं।
भीम करे रक्षा अपनों की, यूं बलिष्ठ है रण ठाले हैं ॥ १० ॥
है तात्पर्य दुर्योधन का, भीषम ने दोनों पाले हैं।
इस कारण दोनों की रक्षा कर, दोनों वन्श संभाले हैं ॥

दोहा—सब नाकों पर जाय कर, भाग लगा चहुं ओर।
भीषम की रक्षा करो, संग रहो निशि भोर ॥ ११ ॥

बूढ़े बाबा कौरव कुल के, दुर्योधन के हरषाने को।
सिंहनाद ऊंचे स्वर से, लग गये वह शंख बजाने को ॥१२॥
तब शंख भेरि ताशे नक्कारे, लेले कर लगे आने को।
डंके उठालिये हाथों घोड़ों में, चोट लगाने को ॥
रणसिंहों में दई फूंक तबी, रण-भूमी गुञ्जाने को ॥१३॥
श्वेतअश्व वाले रथ बैठे, कृष्ण अर्जुन हि लड़ाने को।
दिव्य शंख दोनों के बाजे, रण में धूम मचाने को ॥१४॥
हृषीकेश का पाञ्चजन्य बाजा, कुछ काम बनाने को ॥

और अनन्त विजय देवदत्त, अर्जुन ने मन हुलसाने को।
पौंड्रक महाशंख धरा फिर, भीमका भय दिखलाने को ॥१५॥
कुन्ती सुत राव युधिष्ठिर भी, तब विजय आनन्द कराने को।
सहदेव, नकुल सुघोषमणी, पुष्पक से गन्ध फैलाने को॥१६॥
एक शिखण्डी महारथी, काशी पति धनुष चढ़ाने को।
धृष्टद्युम्न सात्यकी विराट, वैरिन की सेन हराने को ॥१७॥
द्रुपद राज द्रौपदीपुत्र, सब पृथ्वी-पति अड़ जाने को।
महाबाहु अभिमन्यू से लगे, निज निज शंख सुनाने को ॥१८॥

दोहा—सब शंखों की घोर से, गूंजे भू आकाश।
धृतराष्ट्र तव लाल सब, उरमें भये विनाश ॥ १९ ॥
राजन युद्धारम्भ में, शस्त्र पात के काल।
अर्जुन देखा लड़न को, खड़े तुम्हारे लाल ॥२०॥
ऊंचा करके धनुष को, बोला श्री भगवान्।
दोनों दल के बीच में रथ, का करो पयान ॥ २१ ॥

अर्जुन उवाच

छं०—अच्युत अब उनको देखूंगा, जो लड़ने मुझसे खड़े हुए।
किस २ से मुझको लड़ना है, और कौन २ यहां अड़े हुए॥२२॥
ये अंधपुत्र दुर्बुद्धी सब, रण में जो आगे बढ़े हुए।
इच्छा है जिनको जीतने की, देखूं तो कैसे चढ़े हुए ॥२३॥

संजय उवाच

अर्जुन से ऐसे सुन करके, भगवान कृष्ण मन बढ़े हुए।
दोनों सेनाओं के बिच में, रथ को लेजा कर ठढ़े हुए ॥ २४ ॥
भीष्म, द्रोण, सब राजों से, सन्मुख बोले हरि कढ़े हुए।
अर्जुन देखो कुरुवंशिन को, यह खड़े हुये हैं भिड़े हुए ॥२५॥
पितृ, पितामह को देखा, पारथ ने दल में अड़े हुए।
मामा गुरु भ्राता पुत्र पौत्र, मित्रों को भी तो लड़े हुए ॥२६॥

दोनों ही दल में श्वसुर सुहृद,आदिक को शस्तर कढ़े हुए।
देखा सब बन्धुनको अर्जुन, ये तामस खिन्ना पड़े हुए ॥२७॥

गान (क्षेपक)

हाय कैसी मुसीबत यह आई।
मारूं कैसे मैं अपने ही भाई ॥

बाबा भीषम् से पुरुषा हमारे।
पाले पोषे जिन्हों ने हैं सारे ॥
वोही आये हैं करने लड़ाई ॥ १ ॥ हाय०

द्रोण गुरु पै ही शस्तर उठाऊं।
धांटें खा खा के जिन से पढ़ा हूं ॥
विधना उलटी यह कैसी बनाई ॥ २ ॥ हाय०

कृपाचारज पै शस्तर चलाऊं।
हाथ उठता नहीं क्या बताऊं ॥
दया उनको भी यह क्या समाई ॥ ३ ॥ हाय०

अश्वत्थामा पे जो हाथ ठाऊं।
वंश अपने गुरू का मिटाऊं ॥
ब्रह्महत्या भी होगी दवाई ॥ ४ ॥ हाय०

हाय विधना ये क्या दिन दिखाये।
कर्ण विकरण भी लड़ने को आये ॥
कृष्ण तुमही फ़क़त हो सहाई ॥ ५ ॥ हाय०

जितनो दुनिया के हैं जितने वारे।
आये लड़ने को हैं सब विचारे ॥
आज भारत की आई लवाई ॥ ६ ॥ हाय०

सारे गुणवान भारत के आये।
शिर हथेली पै धरके हैं लाये ॥
जाती भारत की है सब बड़ाई ॥ ७ ॥ हाय०

किस पै जाऊं मैं विपता सुनाऊं ।
कैसे भारत की इज्ज़त बचाऊं ॥
"शर्मा" की लो ख़बर जादो राई ॥ ८ ॥

दोहा—अर्जुन के तब हृदय में, दया समाया राग ।
खेदित हो कहने लगा, सुनिये श्री महाराज ॥

अर्जुन उवाच

दोहा—भगवन् अपने जन सभी, रण हित ठाढ़े देख ।
देख शिथिल होती भली, मुख का सूखा वेष ॥२८॥
थर थर कांपू नाथ मैं, कैसे बांधू धीर ।
रोम २ ठाढ़ा भया, पुलकित भया शरीर ॥ २९ ॥

छन्द—भगवान् मेरा गाण्डीवधनुष,भूमीपर खिसका जाताहै।
और त्वचाबीच अग्नीव्यापा,तनखड़ा न होनाचाहताहै
मन व्याकुल हुवा बहुत मेरा,क्षण २ में चक्कर खाता है ।
उलटा प्रारब्ध हुवा देखूं,केशव क्या दृश्य दिखाताहै॥३०॥
रण में अपने जन मार प्रभू, कल्याण कहीं नहीं पाता है ।
ना विजयकी इच्छाहै भगवन्,नाराज्य सुखलहीभाताहै॥३१॥
क्या राज्य भोग गोविन्द देगा,ना जीवित मन हर्षाता है ।
संसार में सारे जीवों से, बस जीने ही तक नाता है ॥ ३२ ॥
जिनके हित राज्य भोग सुखको,प्राणी दिनरात कमाता है ।
धन,प्राण,त्याग वो रण में हैं, यूं जी मेरा घबराता है ॥३३॥
काका, बाबा, गुरु पुत्र, श्वशुर,पोता, श्याला मामाता है ।
सब सम्बन्धी हैं मेरे ही, अर्जुन हरिसे बतलाता है ॥३४॥
त्रैलोकीनाथ भी होने को, जो यह जन मुझे सताता है ।
तौभी,वध इनका मधुसूदन, निश्चय नहीं मुझे सुहाताहै ॥३५॥

अर्जुन उवाच

दोहा—पृथिवी के तो हेतु क्या, मारूंगा भगवान ।
आज रही कल जायगी, झूंठा इस का मान ॥
धृतराष्ट्र के सुतों को, मार पड़े क्या चैन ।
इन आततायिन को हते, पाप लगे दिन रैन ॥ ३६ ॥

तिससे नहीं योग्य हमें इतना, धृतराष्ट्र पुत्र भाई मेरे ।
स्वजनों को मार सुखी कैसा निश्चय माधव दुख ही हेरे ॥३७॥
यद्यपि इनके चित लोभ चढ़े, पृथ्वी की तृष्णा ने घेरे ।
कुल नाश मित्र द्रोहीपन के, पापों पर दृष्टी ना गेरे ॥३८॥
कुल क्षय कृत दोष को देख के भी, हम मारें बन्धु बहुतेरे ।
इस पापसे छुटकारे की विधि, हरि बतलादो अर्जुन टेरे ॥३९॥
कुल धर्म सनातन जाती है, जब मृत्यु मुख में कुल मरे ।
और धर्म नाशके कुलजावे, अधरम फिर आन करें डेरे ॥४०॥
दूषित कुल ललना होने से, अधरम फिर कल्या करै फेरे ।
हे वार्ष्णेय स्त्री दुष्टा हों, वर्णसंकरी सुत मेरे ॥४१॥
पिंडोदक क्रिया लुप्त होवे, पितृगण को जग से उलझेरे ।
कुल घातियों के कुल नर्क लिये, हो वर्णसंकरी जन्मैं रे ॥४२॥
वर्णसंकरी दोष कुलघ्नी, को इन पापों भर दूंरे ।
जाति धर्म कुल धर्म सनातन, होते जावेंगे नेरे ॥ ४३ ॥
और जिनके हों कुल धर्म नाश, हरि उन पुरुषोंकी सुनियेरे
नर्क कुण्ड में निश्चय डूबें, सुनते हैं नहीं तैरें रे ॥ ४४ ॥

दोहा-हाय कष्ट अति पाप का, करना मैं तत्कीन ।
स्वजन हतन उद्यत हुवा, राज्य सुक्ख ललचीन ॥४५॥

जो युद्ध अप्रतिकार को, और अशस्त्र को आय।
शस्त्र उठा कर हाथ में, रण में मारें धाय॥
धृतराष्ट्र के सुतों से, मर कर यूं भगवान्।
होगा सुखी जानिये, मेरा अति कल्यान॥ ४६॥
ऐसे कह अर्जुन रणहिं, फेंक चाप शर धाय।
रथ पीछे मुख फेर कर, बैठ गया अकुलाय॥ ४७॥

इतिश्रीमद्भगवतगीतासूपनिषत्सूब्रह्मवि०श्रीकृष्णार्जुनसम्वादे दयालु छन्दात्मक अर्जुनविषादयोग नाम प्रथमो अध्यायः—

२—अध्याय

सांख्य-योग

संजय उवाच

दोहा—जिमि पहली अध्यायमें, करुणा से कहेबैन।
वैसे ही व्याकुल भये, आंसुन से दो नैन॥
दयावन्त को देख के, दुःख उठाता जान।
अर्जुन से कहने लगे, मधुसूदन भगवान्॥ १॥

श्री भगवान उवाच

छन्द-क्यों तुम्हेभयानक अवसरपे, इसमोहने आकर घेरलिया
हा अनार्यों की भांती, अपयश का अर्जुन काम किया
यो नर्क तुम्हे लेजावेगा, बैकुण्ठ धनञ्जय छोड़ दिया॥ २॥
धिकजीवनहैउसक्षत्रीका, रणमें जिसका पियलाय हिया॥
कायरता तुमको उचित नहीं, हेपारथ वीर परन्तपप्रिया।
इसतुच्छ हृदयकी दुर्बलताको, त्यागखड़ेहो इसविरिया॥ ३॥

अर्जुन उवाच

हे मधुसूदन मैं भीष्म द्रोण, पै कैसे बाण चलाऊंगा ।
अरिसूदन पूज्य मेरे रणमें, इनसे क्या युद्ध मचाऊंगा ॥ ४॥
महाप्रतापी गुरुवों को, नहीं मारूं चुप हो जाऊंगा ।
भीख भी खानी है अच्छी, इस लोक में यह बतलाऊंगा ॥
धनार्थी गुरुवों को हत, संग्राम जीत क्या पाऊंगा ।
वो भोग मुझे हैं रक्तभरे, भोगू तो कहां रखाऊंगा ॥ ५ ॥
हममें है कौन बली रण में, कुछ विदित नहीं क्या ठाऊंगा ।
हमी जीत लेंगे इनको, वा इन से हार कराऊंगा ॥
जिन बन्धुन को मार कभी, जीता नहीं रहना चाहूंगा ।
धृतराष्ट्र के पुत्र खड़े इनपै, नहीं शस्त्र उठाऊंगा ॥ ६ ॥
दोहा—कार्पण्य के दोष ने, मारठिया मन मोर ।
धर्म परीक्षा ना रही, बूझतहूं हरि तोर ॥
भीख मांग खाना भला, वा क्षत्रिय कुल धर्म ।
निश्चय त्रिन इनको हनन, वा पालन का कर्म ॥
हो अवश्य अच्छा मुझे, शरणागत भगवान् ।
मुझे शिक्षा दीजिये, शिष्य आपना जान ॥ ७ ॥
छं०—हाय हाय भगवान् मुझे, दुखदायक विधी ना पावे है ।
सम्पत्तीवान भूमिका भी, निष्कण्टक राज्य ना भावे है ॥
अधिपतित्व देवों का भी पा सो, मोय नहीं सुहावे है ।
इन्द्रिनको जो तपन करे, इस शोक को कौन मिटावे ॥ ८ ॥

सञ्जय उवाच

शत्रुन तापी अर्जुन इतना, कह करके चुप होजावे है ।
हे इन्द्रियपति गोविन्द मेरा अब युद्ध कोऊ नहीं चावे है ॥ ९ ॥
दोनों सेना के बीच देख, अर्जुन तो अति दुखियावे है ।
हंस करके तब हृषीकेश भारत को बचन सुनावे है ॥ १० ॥

गान क्षेपक

जभी लड़ने को सारा ज़माना हुआ।
तुझे अर्जुन धरम का बहाना हुवा।
खड़ा होगा खिताब–हुवा इतना बेताब–जावे सारी ये
आब–होवे खाना खराब–मुझे आना मनाना छुड़ाना
हुवा ॥ १ ॥ जभी०
अरे कहना ले मान–मधूसूदन भगवान–देवें अर्जुन ओज्ञान–
सदा रहवे न जान–तुझे रणमें यह कैसा डराना हुवा ॥ २ ॥
जभी०
लेके बैठा है सोग–नहीं तेरे ये जोग–भोगे क्यों था वो
भोग–जो हैं रागों से योग–ऐसा मरदाना होके ज़नाना
हुवा ॥ ३ ॥ जभी०
गुरु बाबा वो भ्रात–झूठे नाते हैं तात–कोई संग में न
जात–मानो शर्मा की बात–भाई काहे को दुनिया हंसाना
हुवा ॥ ४ ॥ जभी०

श्री कृष्ण उवाच

नहीं सोचने की भी बातों को, तू सोचे है कुम्हिलावे है।
फिर बुद्धी मानो की सी भी, तू बातें हमें बतावे है॥
जो पंडित हैं नहीं सोच करें, माया ले जाल फलावे है।
कोई मरता है कोई जीता है, कोई जावे है कोई आवे है॥११॥
दोहा—मैं वा तू वा नृपति ये, थे नहीं आगे होंय।
अर्जुन यह मत जानियो, बात राखियो गोय॥१२॥
छन्द—जैसे तन धारी के तन में, तीनो पन जाते आते हैं।
बालक पन युवा बुढ़ापे को, इक तन ही पर भुगताते हैं॥
देह दूसरी में वैसेही, प्राणी जाय समाते हैं।
समझदार ऐसी बातों से, कभी नहीं चकराते हैं॥१३॥

शीत, उष्ण सुख दुखदाई, जो मात्रा स्पर्श कहाते हैं ।
हे कुन्ती सुतवे हैं अनित्य, और सहने में नहीं आते हैं ॥
तुम भरत वंशी हो सहन करो, उन को वे ऊधम मचाते हैं ॥
वो आते हैं फिर जाते हैं, फुसलाते हैं बिचलाते हैं ॥ १४ ॥
जिस ज्ञानी को सुख दुख सम हैं, और इनसे दुख ना पाते हैं ।
हे पुरुषर्षभ वो ब्रह्म लोक को, मोक्ष मार्ग से पाते हैं ॥ १५ ॥
नहीं असत्य थिर रहता है, और सतको कौन छिपाते हैं ।
तत्वदर्शी इन दोनों के, निर्णय को आप लखाते हैं ॥ १६ ॥
सो सारे जग में फैल रहा, उस को अविनाशी गाते हैं ।
इस अविनाशी के नाशने को, शक्ती ना कहीं बताते हैं ॥ १७ ॥
नाश रहित इस जीव के देहन, अन्त वन्त दिखलाते हैं ।
यूं अर्जुन लड़ो नित्य जानो, बुद्धी से ना परखाते हैं ॥ १८ ॥
दोहा—मारने वाला जो इसे, जाने है मतिमन्द ।
या मरना ही मान कर, पड़े जगत के फन्द ॥
वो दोनो जाने नहीं, आत्म तत्व का भेद ।
मरे ना मारे आत्मा, वृथा करे क्यों खेद ॥ १९ ॥
छन्द—ये मरता जीता कभी नहीं, होकर नहीं आगे होवेगा ।
सदा ही रहने वाला है, और रूप न अपना खोवेगा ॥
सब से येही पुराना है, और नवा न इससे जोवेगा ।
देह सभी मरजावेंगे, पर इसको ना कोई रोवेगा ॥२०॥
जो जीवको अक्षय नित्य अजन्मा, अविनाशी कर टोवेगा ।
वह इसे हनावे मर किसको, कैसे अर्जुन कर खोवेगा ॥२१॥
दोहा—जीर्णवस्तु को त्याग जन, लैं नवीन को धार ।
त्यूं नव तन धर आत्मा, देह पुरानी तार ॥ २२ ॥
छं०-नहीं शस्त्रभीइसको काटसकें, और अग्नीमें नहींजलताहै ।
वायु भी नहीं सुखायसके, और पानीमें नहीं गलता है ॥२३॥

कटना जलना भिगना सुखना, कुछ भी नहीं विकलता है ।
सर्व व्यापी नित्य सनातन, इस्थिर भाव अचलता है ॥ २४ ॥
यह अचिन्त्य, अव्यक्त आत्मा, बिन विकार बिन छलता है ।
ऐसा जान सोच नहीं योग्य, इस बिन नहीं सफलता है ॥ २५ ॥
जो तू इसका मरना जीना, नित्य हि मान उछलता है ।
महा भुजी तो भी तू सोचे, फिर क्यों नहीं संभलता है ॥२६॥
जन्मा है सो अवश मरेगा, मरा हुआ भी ढलता है ।
फिर तू सोच करे है क्योंकर, जो निश्चय है नहीं टलता है ॥२७॥
आदि अन्त में रहें न प्राणी, बिच में एर एक पलता है ।
पछतावा फिर क्या है अर्जुन, जलता सो ही पिघलता है ॥ २८॥
कोई अचरज से देखे इसको, कोई कह सुन कर मलता है ।
कोई सुनकरके भी नासमझे, ये संस्कार निर्बलता है ॥ २९ ॥
दोहा—नित्य अमर इस जीव का, भारत सब तन बोध ।
इसमें भौतिक शोक को, हैय तुम्हारा शोध ॥ ३० ॥
छं०—अपना भी धर्म देख करके, नहीं योग्य तुझे है दहलाना ।
धर्म युद्ध से और कहीं क्षत्री को ना है सुख पाना ॥ ३१ ॥
पुण्यवान ही क्षत्री को, देवी रण अवसर का आना ।
हे पारथ उनको स्वर्ग द्वार, सन्मुख में निष्कंटक जाना ॥३२॥
जो धर्म युद्ध से भागेगा, तो पापों का फल भुगताना ।
अपना धर्म बिगाड़ के जग में, आरोहित सु दिखलाना ॥ ३३ ॥
देव रूपी नर करें बुराई, सदा को हो जावे ताना ।
योग्य पुरुष का मरना अच्छा, पर बट्टा नहीं लगवाना ॥३४॥
महारथी डरके रण से जानेंगे, तेरा टलजाना ।
बड़ा समझने वाले जो, क्या है फिर छोटा पड़जाना ॥ ३५ ॥
बहुतसी अनकहनी करके, करेंगे तुझ को खिजयाना ।
सामर्थ्य की निन्दा करेंगे जो, तबपड़ेगा तुमको दुखठाना ॥ ३६ ॥

जो मरगया तो स्वर्ग बास हो, जीत गया भू सुख नाना।
इससे निश्चय कर रण को, बस कुन्ती सुत उठ हुलसाना ॥ ३७ ॥
हानि लाभ जय अजय बराबर, सुख दुख जी में नहीं लाना।
ऐसे कर आरम्भ युद्ध को, पाप नहीं फिर लिपटाना ॥ ३८ ॥

दोहा—सांख्य शास्त्र से यो कहा, योग बुद्धि सुन भ्रात।
पारथ यो बुद्धी मिले, कर्म गांठ कट जात ॥ ३९ ॥
इस मग में आरम्भ का, नाश कभी ना होय।
विधि वत पूरो ना बने, तो भी दोष न कोय ॥
लगे योग बिन कामना, थोड़ा भी हो जाय।
महा भयङ्कर क्लेश से, लेवे तुरत बचाय ॥ ४० ॥

छं०—निश्चयात्मक बुद्धी को, कुरुनन्दन एक हि पाते हैं।
डामा डोल बहु शाखो, बुद्धी अनन्त दिखलाते हैं ॥ ४१ ॥
अर्जुन जो अज्ञानी जन, वेदों में वाद लगाते हैं।
ऐसी फूली सोहनि बातें, कह २ करके फुसलाते हैं ॥ ४२ ॥
कुछ और नहीं है स्वर्ग सिवा, कामात्मा ऐसा गाते हैं।
जन्म कर्म फल को दाता, अति क्रिया विशेष बनाते हैं ॥
भोग ऐश्वर्य के पाने को, ऐश्वर्य भोग बन जाते हैं।
जब ऐसे चित खिच जाते हैं, बुद्धी निश्चय नहीं लाते हैं ॥ ४३ ॥
निश्चयात्मक बुद्धी बिन वो, नहीं समाधि में आते हैं।
अर्थात मुझे नहीं पाते हैं, और ब्रह्म लोक बिसराते हैं ॥ ४४ ॥
इस त्रिगुण मई संसार को ही, वेदों का विषय बताते हैं।
तिरगुण को अर्जुन त्याग करो, निर्द्वन्द्व रहो समझाते हैं ॥
सदा सत्व में अटल रहैं, नहीं जोड़ें और रखाते हैं।
अपने में आपको देखें हैं, फिर आप में आप रमाते हैं ॥ ४५ ॥
सब ओर से पूरित जल सरसे, जितना भी अर्थ पुजाते हैं।
ज्ञानी ब्राह्मण सब वेदों से, उतना ही अर्थ सुनाते हैं ॥ ४६ ॥

कर्म का है अधिकार तुम्हे फल में ना कभी बसाते हैं।
नहीं कर्म के फल को कारण कर, अकरम ना उने सुहाते हैं ॥४७॥
छोड़ लगाव कर्म का अर्जुन, योग में कर्म कराते हैं।
वस सिद्धि असिद्धि में सम रहना समत्व को योग जताते हैं ॥४८॥
बुद्धि योग से बहुत ही नीचे, अर्जुन कर्म कहाते हैं।
रहो योग की शरण में आ, वे कृपण जो फल मदमाते हैं ॥ ४९॥
अच्छे बुरे कर्म दोनों से, बुद्धी युक्त बचाते हैं।
युंही योग में जुड़ जाओ, कर्मों में योग कुशलाते हैं ॥५०॥
जो बुद्धि युक्त ज्ञानी कर्मों के, फल को अवश मिटाते हैं।
वो जन्म बंध से छूट जांय, निर्वाण ही जाय समाते हैं ॥ ५१॥
दोहा—ज्यूंही तुम्हारी बुद्धि ये, मोह कीच दे त्याग।
सुने हो सुनने योग्य के, होय तुमें बैराग ॥ ५२॥
बिबिध श्रुती से बुद्धिगत, निश्चल थिर हो जाय।
अचल समाधी होय तब, लीजो योग कमाय॥ ५३॥

अर्जुन उवाच

दोहा०—स्थित प्रज्ञ समाधी में, कोसम कैसा भान।
चलना फिरना किस बिधी, स्थित धियहि बखान ॥ ५४॥

श्रीभगवान उवाच

गान क्षेपक

स्वाहिश ने ही तो अर्जुन संग्राम यह कराया।
दुनिया के बीर लाकर संग्राम में हटाया॥
योही अवध में पहले दशरथ के घर गई थी।
श्री रामचन्द्रजी को बनवास है कराया॥ १॥
फिर योही जाके लङ्का रावण के शिर चढ़ी थी।
बनकर फकीर उसने सीता को जा चुराया॥ २॥

बाली के घर गई थी सुग्रीव को निकाला ।
रघुवर का तीर बनकर बाली भी उसने खाया ॥ ३ ॥
रावण सा, सबसे योधा दुनिया में भी नहीं है ।
परिवार सारा उसका इस रांड ने खपाया ॥ ४ ॥
अब कौरवों के घर में परचण्ड होरही है ।
दुर्योधनादिकों के शिरपैहै काल छाया ॥ ५ ॥
इस ही लिये तो तुम से इकरार कररहा हूं ।
अब कामना बिसारो कारज बना बनाया ॥ ६ ॥
ख्वाहिश को तर्क करके तीरो कमां संभालो ।
फिर जान लेना तुमने भेवान अंग पाया ॥ ७ ॥
गर कामना है अपनी कर काम कुछ प्रभू का ।
निज कामना से जिसने सारा जगत बनाया ॥ ८ ॥
मन वाली सब कामनाएं, पारथ जो तोड़ बगाता है ।
आपे में आपही तुष्ट रहै, वो स्थित प्रज्ञ कहाता है॥ ५५ ॥
दुख सेना उद्विग्न हो मन, सुख सेना स्पृह लाता है ।
भय क्रोध राग जीते जिसके सुनिश्चित धीयउहि बताता है॥५६॥
जो सर्वत्र स्नेह बिना, शुभ अशुभ में एकही पाताहै ।
आनन्द द्वेष इन दोनों में, ना स्थित प्रज्ञ बताता है ॥ ५७ ॥
जैसे कछवा सब अंगों को, अपने भीतर लेजाता है ।
वैसे प्रज्ञो सब इन्द्रिन को, विषियों से पूर्ण हटाता है ॥
देहिन के आहार बिना, विषियों का भोग मिटाता है ।
भोग वासना रहजाने पर, मन ही मन पछताता है ॥ ५८ ॥
परम विष्णु पद के दर्शन से, रस भी फेर नशाता है ।
वासना सब मिट जाती हैं, नहीं भोग कोफिर चीन्हाताहै॥५९॥
कौन्तेय विद्वज्जन भी जो, यत्न से बुद्धि थिराता है ।
कुन मथनी इन इन्द्रियों से, बरबस होमनहि हराता है ॥६०॥

योग युक्त उन सब को नियमित, करमुक्त में लहलाता है ॥
इन्द्रियां वश कर लेता है, वोहि मन प्रतिष्ठपाता है॥ ६१ ॥
विषयों में ध्यान लगाने से, नर उसी विषय रमजाता है ।
संगसे काम उत्पन्न होय कर, क्रोध को फिर उपजाता है॥६२॥
क्रोध से मोह प्रगट होकर, वो फिर स्मृती भुलाता है ।
स्मर्णा शक्ति मिट जाने से, ये बुद्धी नाश कराता है ॥
निश्चयात्मका बुद्धी को, जब प्राणीयों बिसराता है ।
मर्ण होयकर विषयों में, फिरता ये चक्कर खाता है ॥ ६३ ॥
जो आत्मवशी और विधेयात्मा, रागद्वेष नशाता है ।
इन्द्रिन से विषयों में विचरे, वो आनन्द मनाता है ॥ ६४ ॥
निर्मल चितके होने से यो, सारे दुःख नशाता है ।
चित प्रसन्न हो जाने से फिर, शीघ्रहि बुद्धि ठराता है॥ ६५॥
नहीं अयुक्त की बुद्धी थिर, नहीं आत्मज्ञान दर्शाता है ।
भावनाबिनकोशान्तिनहीं, बिनशान्तिनहींसुखियाता है॥६६॥
जैसे वायु तीव्र वेग से, जल में नाव बहाता है ।
वैसे इन्द्रीं जब विषियों में, विचरें जो ललचाता है ॥
लोभी मन इन्द्रिन पीछे, विषयों में को धाता है ।
संग में बुद्धी को लेजाकर, पद्यो को हरवाता है ॥ ६७ ॥
सब ओर से जिसकी इन्द्रिन कोइन्द्रिन कार्थ भुलाता है ।
हे महा भुजा वाले सुनले, वो प्रज्ञा प्रतिष्ठाता है ॥ ६८ ॥
दोहा—जो सब भूतों की निशा, संयमि का वो भान ।
प्राणी भूलें स्वप्न में, संयमि जागे ज्ञान ॥
जो भूतों का जागना, निशा वो मुनि विद्वान ।
ये विषयों में जागते, वो सोये सुनसान ॥ ६९ ॥
जैसे आपहि पूर्ण हैं, अचल प्रतिष्ठावान ।
सागर में जल जातहै, फिर भी ना उतरान ॥

ऐसे जिसकी कामना, प्राप्त भई सब आन।
वही शान्ती प्राप्त हो, कामी को नहिं जान ॥७०॥
सर्व कामना त्याग नर, निश्चय जो विचराय।
मैं मेरे को छोड़ कर, शान्ती रूप होजाय ॥ ७१ ॥
यो ब्रह्म स्थिति पाय कर, मोहित पार्थ न होय।
अन्त काल स्थित हुवे, ब्रह्म निर्वाणहि सोय ॥

इति श्री मद्भगवद्गीता सूपनिषत्सू ब्रह्म विद्यायां योग शास्त्रे श्री कृष्णार्जुन संवादे दयालु छन्द पद्यात्मक भाषा टीका सांख्य योगो नाम द्वितीयोऽध्याय समाप्तम्

३—अध्याय।

कर्म-योग

दोहा—सुन दूसरी अध्याय में, सांख्य शास्त्र का ज्ञान।
मेरी सूझी ना भई, बोला श्री भगवान ॥

अर्जुन उवाच

तुमें जनार्दन बुद्धि योग, जो कर्म से अच्छा प्यारा है।
फिर डरावने कर्मों में, केशव क्यों मुझको डारा है ॥ १ ॥
ये मिली झूली बातें कह कर, बुद्धि भिरमा मोय मारा है।
बस एक बात निश्चय कहदो, जो मेरा अन्त सहारा है ॥ २ ॥

श्री भगवान उवाच

इस लोक में दो विधिसे मारग, प्रथमहिमैं अनघ उचारा है।
सांख्यभक्तको ज्ञानयोग, योगिन को कर्म हमारा है ॥ ३ ॥
बिना कर्म आरम्भ किये, वो नैष्कर्म ने मारा है।
कर्म छोड़ने से नहीं सिद्धी, और नहीं निस्तारा है ॥ ४ ॥
बिना कर्म क्षणभरभी कोई, कभी न रहने हारा है।
प्रकृति गुणों के वश में है, सब कर्म करैं ना चारा है ॥ ५ ॥

जिन कर्मेन्द्रियाँ रोकी हैं और मनसे विषय विचारा है ।
वो मूढ़मती मिथ्याचारी, और धोखा देने वारा है ॥ ६ ॥
कर्मेन्द्रिन से कर्म करें जो अर्जुन मेरा पियारा है ।
इससे तुम कर्म करो वोही, जो क्षत्रिय धर्म तुमारा है ।
क्योंकि नहीं करने से करना, अच्छा और हेत हमारा है ।
अकरम होने से होवे नहीं, चलता देह पसारा है ॥ ८ ॥
इस लोक में अर्जुन यज्ञोंके, कर्मों ने ही जग तारा है ।
अन्य कर्म से कर्म फाँस में, बंधे न होवे न्यारा है ।
यज्ञ लिये जो कर्मोंको, करता बिन बहु संभारा है ॥ ९ ॥
कर्मों का फल संग छोड़ करने से हो निस्तारा है ।

दोहा--प्रजापती यज्ञों सहित, प्रजा रची जब काल ।
बोले इन यज्ञों विषय, वृद्धि तुमारी हाल ॥
यज्ञों से सब कामना, विधिवत पूरण जान ।
यज्ञ करो सारी प्रजा, कहना मेरा मान ॥ १० ॥

छं०--तुम यज्ञों करके देवों को, पुजोगे और बढ़ाओगे ।
वो सुरभी तुमें बढ़ावेंगे, और मन इच्छा फल पाओगे॥
यों परस्परी व्यवहारोंसे तुम दोनोंही सुखपाओगे॥११॥
उन देवोंसे इच्छित भोगोंको, निश्चय कर अब लाओगे ।
जो उनको दियेबिनाभोगोगे, निश्चय चोरकहाओगे ॥१२॥
सब पापों से छूटजाओगे, और पापी ना कहलाओगे ।
जो अपने लिये पकाओगे, पापीहो पापभखाओगे ॥१३॥
अन्नों से प्राणी बनते हैं, वर्षा से अन्न उगाओगे ।
यज्ञों से वर्षा होती है, कर्मोंसे यज्ञ उपजाओगे ॥ १४ ॥
वेदों से करम हुवे जानो, अक्षर से वेद बनाओगे ।
सर्वार्थ प्रकाशक वेद नित्य, वेदोंसे यज्ञ रचाओगे ॥१५॥

इस चलते हुवे चक्रको जगके, ऐसे नहीं चलाओगे।
इन्द्रियराम पापमें अर्जुन, निरर्थकजन्म गवांओगे ॥१६॥
जो आत्मामें ही तृप्त हुवे तुम, आत्मामें मगन होओगे।
आत्मामें सन्तुष्ट हुवे, फिर कारे कर्म मचाओगे ॥ १७ ॥
नहीं प्रयोजन करने से, फिर नहींना करना पाओगे।
इसीलिये सब प्राणियोंसे, कुछ कारज नहींरखाओगे॥१८॥
इसीलिये जो बिना फंसे, तुम उत्तम कर्म बनाओगे।
बिना फंसे करते २, चल परमधाम को जाओगे ॥१९॥
जनकादिक की भांति कर्मसे, तुमभी सिद्धि जनाओगे।
लोक संग्रह को भी देखो, तौ भी कर्म निभाओगे ॥२०॥

दो०—सज्जन जैसा करत हैं, सोही करें सब लोग।
जो प्रमाण सो मानलें, जग बरतै तेहि योग ॥२१॥

छं०—अर्जुन त्रैलोकी भर में भी, मुझको कुछ काम न करना है।
प्राप्त अप्राप्तकी नहीं इच्छा, कर्मों में अवश्य विचरना है॥२२॥
फल आलस छोड़ कभी मुझको, कर्मों से तो नहीं डरना है।
क्यों मेरे मार्ग परही चलकर, सब जनको अर्जुन चलना है॥२३॥
जो मैं कर्मों को छोड़ूं, तो सब संसार बिगड़ना है।
इस धर्मप्रजा का नाशकरूं, और वर्ण संकरी भरना है ॥२४॥
जैसे ओरत अज्ञानी को, कर्मों में रम के मरना है।
लोक संग्रह में विरक्त, ज्ञानी को भी अनुसरना है ॥२५॥
कर्म संगी अज्ञानियों का, विद्वानों से ही उधरना है।
विद्वज्जन के कर्म त्याग से, इनका बुद्धि बिगड़ना है॥
योग युक्त हो इसी हेतु से, कर्म ही करना वरना है।
आप करें करवावें उनसे, कर्मों से नहीं टरना है॥२६॥
प्रकृति गुणों की सबही से, तो सब कर्मों का करना है।
अहंकार से मूढ़ा प्राणी, माने मुझ से फिर ना है ॥२७॥

तत्त्व विदों ने महाबाहु, गुण कर्मों को तो देखा है ।
गुण ही गुणों में बरते हैं, उनको यों ज्ञान विचारा है ॥२८॥
प्रकृति गुणों से भूले प्राणी, का गुण कर्मों गिरता है ।
उन अल्पज्ञी मंद बुधनको, सर्वज्ञी नहीं छेड़ता है ॥२९॥

दो०—तू अध्यात्मक चित्त से, मुझ को कर सब काज ।
आशा ममता शोक तज, युद्ध करो कुरुराज ॥३०॥

गाना क्षेपक

हिम्मत हारता है, क्यों ना मारता है, तू तो भरतवंशी
औतारी (टेक)

दुनियां के सब वीर खड़े हैं बड़े २ बलधारी ।
तुझे कुरुदिलों आन दबाया कुल की लाज बिसारी ॥१॥
शांतनु एक बाबा तेरे गङ्गा जिन की नारी ।
भीष्म से बाबा को देखो ऐसा वो ब्रह्मचारी ॥२॥
दूध लजावे है कुन्ती का रोय मरे महतारी ।
सुरपति का बेटा कहलावे क्यों गई है मत मारी ॥३॥
इस कुल में ना हुआ है कोई जिस ने हिम्मत हारी ।
धनुषां कहीं हाथ कर दो २ क्यों करता गफलदारी ॥४॥

छं०—जो मनुष्य मेरे इस मत पै, श्रद्धा से नित चलते हैं ।
अनुसूया का त्याग करें, तो कर्मों से ना डरते हैं ॥३१॥
जो जन इस की निन्दा कर के, मेरे मत से टलते हैं ।
दुष्ट चित्त सब ज्ञान विमूढ़ो, बिन पुरुषारथ मरते हैं ॥३२॥
ज्ञानी जन भी निज प्रकृति, अनुसार ही चेष्टा करते हैं ।
निग्रह ही क्या करे प्रकृति, पर प्राणी अनुसरते हैं ॥३३॥
इन्द्रिय के विषयों में तो, सब राग द्वेष ही फिरते हैं ।
इनके वश में नहीं आना, ये बटमारी कर हरते हैं ॥३४॥

अपना धर्म बुरा भी हो तो, दूजे पर ना गिरते हैं।
दूसरा धर्म महाभय दायक, अपने ही में मरते हैं ॥ ३५ ॥

अर्जुन उवाच

हे वार्ष्णेय बिन इच्छा भी, केवश विषियों में जुरते हैं।
और किस के धक्का देनेपर, जन पाप पपन में फिरते हैं ॥३६॥

श्री भगवान उवाच

अस काम रजोगुण से होकर ही, क्रोध रूपमें वरते हैं।
महा उग्र इस शत्रु ही को, सूख अग्नी से जरते हैं ॥ ३७ ॥
दोहा—जैसे धूआं अग्नि पर, शीशे पर मल आय।
झिल्ली बालक को ढकै, ज्ञान इस्से ढक जाय ॥ ३८ ॥
छं०-इस काम रूप अग्नी का अर्जुन, भरना पेट बड़ा भारी।
ज्ञानी से नित बैर करै, और ज्ञान ढके करता रुवारी ॥३९॥
इन्द्रिय मन और बुद्धी में, रहता है यों डरर धारी।
ज्ञान ढके इनके द्वारा, देहिन को दे पटकी सारी ॥ ४० ॥
प्रथम इन्द्रियों को रोको, इस्से तुम भारत सुख कारी।
अवश ज्ञान विज्ञान विनाशक, पापी मारो शत्रु हारी ॥४१॥
सबसे प्रबल इन्द्रियां हैं, पर मन की महिमा अधिकारी।
मनसे बुद्धी बड़ी प्रबल, और उसकी महिमा है न्यारी ॥४२॥
हे महाभुजी ऐसे बुद्धी से, प्रबल काम स्वेच्छा धारी।
जीव ब्रह्म से रोक दुःसह शत्रू सब बल संहारी ॥ ४३ ॥
दोहा—यों तीसरी अध्याय में, अर्जुन को समझाय।
इच्छा रूपी शत्रु को, हरिने दिया हनाय ॥

इति श्री मद्भगवद् गीता सूपनिषत्सु ब्रह्म विद्यायां
योग शास्त्रे श्री कृष्णार्जुन संवादे दयालु
छन्द पद्यात्मक भाषा टीका कर्म
योगोनाम तृतीयो ऽध्याय

अध्याय ४

कर्म ब्रह्मार्पण-कर्मयोग

दोहा–अब चौथी अध्याय में, सोहीं कर्म की बात ।
अर्जुन को विस्तार से, भगवत यों समझात ॥

श्रीकृष्ण उवाच

छं०- मैंने ही इस कर्मयोग, अव्यय को रवि से बतलाया ।
रविने वैवस्वत मनु को, मनु ने इक्ष्वाकू समझाया ॥ १ ॥
ऐसे ही यह परम्परा से, एक दूसरे पर आया ।
अहो परन्तप, राजऋषी, पुरुषों ने इसको यूं पाया ।
सो यह योग इस समय प्रकृति, ने निज गर्भहिं दुबकाया ।
बहुत काल से नष्ट हुवा था, अब तुमको ही बतलाया ॥२॥
सोही पुरातन योग जान, तुम से मैंने यह कह गाया ।
क्योंकी मेरे भक्त सखा हो, उत्तमरहस्य ये सुनवाया ॥ ३ ॥

अर्जुन उवाच

जन्म तुम्हारा अभी हुवा, और सूर्य प्रथम ही जन्माया ।
तुम आदि में उनसे कहा प्रभू, मैं कैसे जानू भिरमाया ॥४॥

श्री भगवान् उवाच

मेरे तेरे जन्म बहुत से बीते, अर्जुन अघुछाया ।
मैंतो उन सबको जानूंहूं, और तैंतो ज्ञान है बिसराया ॥५॥
यद्यपि मैं अजन्म अविनाशी, भूतनाथ हूं कह छाया ।
तौभी निज प्रकृती आश्रय, निज मायासे तन धरआया ॥६॥
जब जब धर्मकी हानि हो, और अधरम ने हो शिर ठाया ।
तभी तभी उतरा भारत में, भूमि भारको उतराया ॥ ७ ॥

सज्जन पुरुषों की रक्षा, और दुष्ट विनाशन को धाया ।
धर्मस्थापन के कारण, मैं युग २ में तन दिखलाया ॥ ८ ॥
जिसे अलौकिक जन्म कर्म का, तत्त्व मेरा कुछ समझाया ।
देह छोड़ने पर नहीं जन्मै, मुझमें मिलकर ही आया ॥९॥
क्रोध मोह भय छोड़ मेरे, आश्रित हो मुझमें मन लाया ।
ज्ञानरूप तपसे शुद्ध होकर बहुत मिले मुझमें आयो ॥१०॥

दोहा—जो जैसा मुझ को भजै, सोहि वैसे तेहि देत ।
मेरे ही सब मार्ग हैं, जन कोई सा लेत ॥ ११ ॥

छं०—कर्म सिद्धि की इच्छा से, यहां सुर पूजन में आते हैं ।
मनुष्य लोक में कर्मसिद्धि को, शिघ्र ही होता पाते हैं ॥१२॥
गुण कर्मों का बांट लगा, हम चार वर्ण उपजाते हैं ।
उनका कर्ता अविनाशी, तू करता मुझे बताते हैं ॥ १३ ॥
ना कर्म फलों की इच्छा है ना, कर्म मुझे लिपटाते हैं ।
जो मुझको ऐसा जानते हैं वो कर्मों ना फंसियाते हैं ॥१४॥
प्रथम मुमुक्षु जन भी यों, यह ज्ञान कर्म करताते हैं ।
करो कर्म तुम योंहि प्रथम, जैसे जन करते आते हैं ॥ १५ ॥
कर्म अकर्म के जानने में, कवि जन भी धोका खाते हैं ।
वो कर्म मैं तुमसे कहता हूं, जेहि जानके अबहिं छुड़ाते हैं ॥१६॥
कर्म अकर्म विकर्म ज्ञान कर, होना उचित जनाते हैं ।
इन तीनों की गहन गती, कठिनाई से सुझियाते हैं ॥ १७ ॥
कर्म अकर्म में देखते हैं, अकर्म में कर्म दिखाते हैं ।
वो जन बुद्धिमान कर्म, करते योगी कहलाते हैं ॥ १८ ॥
इच्छा संकल्प बिना सारे, कर्मों में जो जुड़ जाते हैं ।
ज्ञानाग्नी से कर्म भस्म, करते को पंडित गाते हैं ॥ १९ ॥
कर्म फलों का संग त्याग, नित तृप्त हुवे विचराते हैं ।
बिना सहारे कर्म करें, कुछ कर्ता नहीं कहाते हैं ॥ २० ॥

जो बिन आशा तन मन, वशकर सब वस्तु बिसराते हैं ।
शरीरार्थ बस कर्म करें, वो पापों नहीं फंसाते हैं ॥ २१ ॥

गाना (क्षेपक)

हमतो भारत में धर्म फैलाये जांयगे (टेक)
घर घर में जावें, धर्म सुनावें धर्मकी धूम मचाये जांयगे ।१।
धर्मकी नैया, डूबत है भैया, अबतो हमभी लगायेजांयगे ।२।
जुआ खिलाना, रण्डी नचाना, बिलकुल बुराही बतायेजांयगे ३।
सन्ध्या करावें, तर्पण सिखावें, यज्ञकर्म ही कराये जांयगे ।४।
मन्दिर में जावें, ध्यान लगावें, शिवजीपै जलतो चढ़ायेजांयगे ।५।
निजपुस्तकालय और विद्यालय, धर्मसमाजनखुलायेजांयगे ।६।
ऋषीहमारे पुरुषा हैं सारे, उनकेवचनको निभायेजांयगे ।७।
कपावें आके, अविलदासजाके, ऐसेही भजनों सुनाये जाँयगे ।८।

छं०-जो स्वयं लाभ से कुशल रहें और ईर्षा द्वन्द्व मिटाते हैं ।
सिद्धि असिद्धि में सम रहते वो कर्मों ना बंधियाते हैं ॥२२॥
कर्म फलों से अलग मुक्त, जो ज्ञान में चित्त बिठाते हैं ।
यज्ञों के हित कर्म करें वो सारे कर्म नशाते हैं ॥ २३ ॥
होता ब्रह्म अग्नि घी, ब्रह्महि ब्रह्म को हवन कराते हैं ।
जो समाधि को ब्रह्म में लख, देखें वो ब्रह्म हुए जाते हैं ॥२४
कोई योगी तो देवताओं के, अर्थ हि यज्ञ रचाते हैं ।
ब्रह्माग्नि में कोई यज्ञ को, यज्ञ से ही हवनाते हैं ॥ २५ ॥
कुछ कर्णादिक इन्द्रिय को, संयम अग्नि में हुमाते हैं ।
कुछ शब्दादिक विषयों को, इन्द्रियाग्निजु हवाते हैं ॥२६॥
कितने ही योगी सब करनी, और प्राण करम को टाले हैं ।
आत्मसंयमी ज्ञान प्रज्वलित, अग्नीदेव जिमाते हैं ॥ २७ ॥
कितने ही तो धन से तप से, योग से यज्ञ रचाते हैं ।
वेदाध्ययन और ज्ञान यज्ञ में, कुछ यती लग जाते हैं ॥२८॥

प्राण अपान में कितने ही, कुछ अपान प्राण में लाते हैं ।
प्राण अपानकी घात रोक, कुछ प्राणमें प्राण खपाते हैं ॥ २९॥
कोई नियमित भोजन करके, प्राणों में प्राण लगाते हैं ।
सब जाननेवाले यज्ञों के, ये यज्ञसे पाप नशाते हैं ॥३०।
जो यज्ञ से बची हुई वस्तु, अमृतरूपी को खाते हैं ।
वो सदा निरन्तर रहने वाले, ब्रह्म में जाय समाते हैं ॥
हे कुरुओं में सबसे अच्छे, जो नहीं यज्ञ रचाते हैं ।
उनको परलोक व्यवस्थाक्या, वो यहांभीतो किलसातेहैं ॥३१॥
इस प्रकार के बहुत यज्ञ, जो विस्तृत वेद लखाते हैं ।
वो सब कर्मों से होते हैं, जो समझें वो छुटजाते हैं ॥३२॥
अहो परम तप द्रव्य यज्ञ से, ज्ञान यज्ञ उपियाते हैं ।
अखिल कर्म सारे पारथ सब ज्ञानहि जाय समाते हैं ॥३३॥
दो०—तत्त्व दर्शि और ज्ञानियों, की सेवा में जाय ।
कर प्रणाम उपदेश लो, वो दे तुमें सिखाय ॥३४॥
छं०—जिसे जानकर पांडुपुत्र, फिर तुझ को मोह न आवेगा ।
इन सब भूतोंको मुझमें, अपने में पूर्ण लखावेगा ॥३५॥
जो तू सारे पापियों से भी, पापी अधिक कहावेगा ।
तौ भी ज्ञानकी नावमें बैठा, पाप समुद्र तिरावेगा ॥३६॥
जलता हुआ अग्नि जैसे, ईंधन की राख करावेगा ।
ज्ञान अग्नि सब कर्मों को, त्यूं अर्जुन भस्म बनावेगा ॥३७॥
ज्ञान समान शुद्धकर्ता, इस जग में तू नहीं पावेगा ।
कुछ काल योग सिद्धी करके, आपे में आप दिखावेगा ॥३८॥
जितेन्द्रिय श्रद्धावाला, ज्ञानहि में तनय लगावेगा ।
ज्ञानपायकर बहुत शीघ्र, वो परमशान्ती लावेगा ॥ ३९ ॥
जिसको ज्ञान न श्रद्धा है, और मन में संशय लावेगा ।
वो नष्ट हुआ अज्ञानी दोनों, लोकों के सुख बिसरावेगा ॥४०॥

जो कर्मयोग से कर्म छोड़, कर ज्ञान से भ्रमहिं मिटावेगा ।
आत्मनिष्ठ होकर वो अर्जुन, कर्मों ना बंधियावेगा ॥ ४१ ॥
दोहा—इस कारण अज्ञान से, जो मन संशय आय ।
ज्ञान खड्ग से काट कर, योग में उठ लगजाय ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु, ब्रह्मविद्यायां, योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन सम्वादे दयालुकृत पद्यात्मक भाषा टीका कर्म ब्रह्मार्पण योगोनाम चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥

अध्याय—५

संन्यास-योग

अर्जुन उवाच

दोहा—कर्म त्याग फिर योग भी, दोनों श्रेष्ठ बताय ।
कृष्ण जो निश्चय श्रेष्ठ हो, वो दो मुझे बताय ॥१॥

गान (क्षेपक)

प्रभू तुमने मुझ से यह क्या छल किया है ।
क्या उलझा या धोका मुझे भी दिया है ॥
कभी कर्म की करते बेहद बड़ाई ।
कभी तुमने संन्यास अपना लिया है ॥ १ ॥
न मुझ से करो चाल की ऐसी बातें ।
ज्यूं दूध में सखी के दिया कर पिया है ॥ २ ॥
तुम्हीं मोरध्वज के गये सुत चिराया ।
रहा जब वो खातिर तो फिर सुत जिया है ॥३॥
कहैं भस्मा करतूत है सब तुम्हारी ।
सदा तैंने अम्बर कैर फाड़ा सिया है ॥ ४ ॥

श्री भगवान् उवाच

छं०—कर्म योग और कर्म त्याग, यद्यपि दोनों सुखकारी हैं।
पर दोनों से कर्म त्याग से, कर्म की महिमा भारी हैं ॥२॥
जो न किसी से द्वेष करे, और इच्छा सकल विसारी हैं।
उसे सदा संन्यासी जानो, मानो बात हमारी हैं॥
जो निर्द्वन्द्व हुआ हो विचरे, महाबाहु भय हारी है।
वो संसारी बन्धन को, सुख से काटे बलकारी है॥३॥
सांख्ययोग को भिन्न भिन्न, किसी बालक ने लिखमारी है।
पण्डित जनकी सम्मति में, ऐसी क्यों होने वारी है।
इकपे भी जो भली भांति, स्थित होवे करतारी है।
वो दोनोंका फल पाताहै, जिसकी महिमा विस्तारी है॥४॥
जिस स्थान ज्ञानी जावे, कर्मीकी भी वोही क्यारी है।
ज्ञानकर्म एकही से देखें, वो विद्वान् विचारी है॥५॥
कर्म बिना संन्यासी होना, महाबाहु दुखकारी है।
योगयुक्त मुनि शीघ्र ब्रह्म में, जाय मिले सुखकारी है॥६॥
मनविशुद्ध जिन कर्मी ने, निज तन इन्द्रियें हरहारी है।
सबभूत आत्मनिजआत्म दिखावे, कर्त्ताकर्म निवारी है॥७॥
जिस कर्मयोगि तत्व ज्ञानी ने, ऐसी दरसैं धारी है।
इन्द्रियार्थ में इन्द्री वरतैं, आत्मा इन से न्यारी है॥
वो देखने, सुनने, छूने, से और सूंघने से भी भारी हैं।
चलना, सोना, श्वास का लेना, बोलना भी तो भारी है॥
छोड़ पकड़ना नेत्र खोलना, मीचना सब कुछ जारी है।
परमैं कुछभी नहीं करता, ऐसा माने सूमटारी है॥८॥ ९॥
ब्रह्म हेतु जो संग छोड़ कर, करता कर्म संभारी है।
वो पापोंसे नहीं लिहसता है, ज्यं कमलपत्र जलधारी है॥१०॥

आत्म शुद्धि को संग त्याग, योगिन की कृत्य कारी है ।
तन से मन से बुद्धि से, केवल इन्द्रिन से कारी है ॥ ११ ॥
कर्म फलों को त्याग के योगी, परम शान्ती धारी हैं ।
इससे कामित कर्म करें जिन, योगी पाश संचारी हैं ॥१२॥
जितेन्द्रिय देही जो मन से, सब कार्यों का त्यागी है ।
कर्ता करवाता होकर रहे, पुर नव द्वार सुखारी है ॥ १३ ॥
प्रभू कर्म कर्तव्य लोक का कभी न सिरजन हारी है ।
कर्म फल संबन्धन करता, यह प्रकृति संचारी है ॥१४॥
दोहा—जीव किसी का पाप ना, और पुण्य ना पाय ।
ज्ञान ढपै अज्ञान से, यों प्राणी भ्रम जाय ॥ १५ ॥
छंद—जिनका वो अज्ञान आत्मिक, ज्ञानने सारा नाश किया ।
उनके भानु समान ज्ञान ने, परम तत्व परकाश किया ॥१६॥
बुद्धि आत्मा, निष्ठा का बस जिनके उर में वास भया ।
उसही में तत्पर रहते हैं, और परम सहारा मान लिया ॥
इन पुरुषों के पापों का तो ज्ञान से मानों नाश भया ।
सदा एक रस रहते हैं, वो नहीं आते फिर मरा जिया ॥१७॥
विद्या विनय वान सुन्दर, और गऊ अरु भंगी कुतिया ।
पंडित जन की दृष्टी में तो, रहे बराबर गज गदया ॥ १८ ॥
जिनका मन समता में रहे, उन जीते जीही जग जितिया ।
है निर्दोष समान ब्रह्म यूं, ब्रह्म में रहते हैं सुखिया ॥१९॥
स्थिर शील ब्रह्म ज्ञानी, जो ब्रह्म में रहता थिर बुधिया ।
प्रिय वस्तु पाकर ना फूले, ना अप्रिय से हो दुखिया ॥ २० ॥
जो बाह्येन्द्रिय से ना मोहित, आत्म चाट का है चखिया ।
वो ब्रह्म योग युक्तात्मा है, और अक्षय सुखका है भुगिया ॥२१॥
जो स्पर्श से भोग बनैं, वो दुःखों के कारण भया ।
बुद्धिमान यों रमते ना, क्यों आदि अंत उन में भुगिया ॥२२॥

जीवन मरने से पिरथम ही, काम क्रोध गति रुकवय्या ।
वोही सुखी नर होताहै, और वोही योग का करवय्या॥२३॥
जो आत्मामें ही सदासुखी, और अन्तर क्रीड़ाका करिया ।
आत्म ज्योति प्रकाशित है, और आत्म तत्व का समकय्या॥
ब्रह्म स्वरूप हुवा सो योगी, मोक्ष धाम का पहुंचय्या ।
परमानन्दस्वरूप पूर्ण हो, जन्म मरण का मिटवय्या ॥ २४ ॥
जिनके पाप दूर हो जावें, और संशय से छुटवय्या ।
सब प्राणिन के हित में रहते, अपने मनके थमवय्या ॥
यही कृपालु-ऋषि महात्मा, शिव स्वरूप के दिखवय्या ।
पहुंचे हैं निर्वाण ब्रह्म में, शुद्ध मार्ग के चलवय्या ॥ २५ ॥
जो करी आत्मा को जानैं, और काम क्रोध का फटकय्या।
चित्त भी जिसने रोक लिया, निर्वाण ब्रह्म को वरवय्या॥२६॥

दोहा—बहिर विषय बाहर करे, भौं विच आंख जमाय ।
प्राण अपान को सम किये, श्वासा नाक चलाय ॥२७॥
बुद्धि इन्द्रिय मन वश करे, जो मुनि मोक्ष लखाय ।
क्रोध इच्छा भय त्यागकर, नित्य मुक्त हो जाय ॥२८॥
यज्ञ और तप भोगता, सब लोकों का नाथ ।
सब भूतों का मित्र लख, शांति तुम्हारे हाथ ॥२९॥
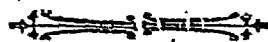
इति श्री मद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योग
शास्त्रे श्री कृष्णार्जुन सम्वादे दयालु छन्द पद्यात्मक
भाषा टीका कर्मसंन्यास योगो नाम
पंचमोऽध्यायः समाप्तः ।

अध्याय—६

आत्मसंयम-योग

श्रीकृष्ण उवाच

दो०—कर्म फलों की आश तज, जो निज कर्म कमाय।
सोई संन्यासी योगि है, क्रिया अग्नि बिन जाय ॥१॥
छं०—अर्जुन जिसको संन्यास कहैं, उसको ही योग बताते हैं।
जिसने संकल्प नहीं त्यागे, वो योगी ना ठहराते हैं ॥२॥
योग प्रवर्ती मुनियों को तो, कारण कर्म कहाते हैं।
योगारूढ़ हुये पर उनको, शम कारण बतलाते हैं ॥३॥
जब इन्द्रिन के विषयों में, ना कर्मों में लुभियाते हैं।
सब संकल्पों को छोड़े, तब योगारूढ़ हो जाते हैं ॥४॥
आत्मा से ही आत्मा को, कोई उद्धारन बिठलाते हैं।
किसी भांति से आत्मा को, वह नीचे नहीं गिराते हैं ॥
आत्मा को ही आत्मा का, कोई सखा मित्र बनाते हैं।
कोई आत्मा आत्मा ही को, शत्रु बन दिखलाते हैं ॥५॥
बुद्धी से जो निश्चय करके, मन ही को जितवाते हैं
वोही जीव तो आत्मरूप, मनको निज मित्र बनाते हैं ॥६॥
जिसने मन नहीं जीता है, अब उसकी बिपा सुनाते हैं।
उस को मन शत्रु हो करके, शत्रु सम मरवाते है ॥ ६ ॥
आत्मजिती और शान्तिवान्, परमात्मा में लहलाते हैं।
मान अपमान सर्दी गर्मी, दुख सुखमें एक से पाते हैं ॥ ७ ॥
ज्ञान विज्ञानसे तृप्त आत्मा, जितेन्द्री नहीं डाते हैं।
सोना लोहा पत्थर सम हो, युक्त योगि तेहि गाते हैं ॥८॥
उदासीन मध्यस्त—सुहृद, और मित्र शत्रु जो आते हैं।
बन्धू द्वेषी-साधू-असाधु-को, एकहि दृष्टि लखाते हैं।

ऐसे योगी सब दुखी से, जो निज कर्म कमाते हैं ।
इस योगी को सारे योगी, सब में श्रेष्ठ जताते हैं ॥ ९ ॥
अलग अकेले बैठे योगी, आत्मा में मन लाते हैं ।
आश परिग्रह त्यागकर्दा, आपे में आप रमाते हैं ॥ १० ॥

ज्ञान दीपक

अर्जुन को संग्राम भूमि में, योग रीति भगवान् बतावें ।
अलग अकेले बैठे योगी, आत्मा में अपना मन लावें ॥
आशा तृष्णा छोड़ सदा ही, आपे में फिर आप रमावें ॥१॥
छं०—शुद्ध देशमें आसन अपना, निश्चलता से जाय लगावें ।
चौकीगद्दा ठीक करें फिर, कुशाका आसन लाय बिछावें ॥२॥
धड़ शिर गला बराबर सीधा, रक्खें हैं और नहीं चलावें ।
मन और इन्द्री थामके सारी, जगको नहीं आंख उठावें ॥३॥
अपने नाकके टक्के परही, ध्यान लगा कर आंख लड़ावें ।
अर्माकिहै शान्तकर मनको, फिर निर्भय आनन्द मनावें ॥४॥
छं०—शुद्ध देश में अपना आसन, स्थिरता से लगाते हैं ।
ना अति ऊंची ना अति नीची, भूमी ठीक कराते हैं ।
गड्ढे टीले आदिक पर भी, आसन नहीं जमाते हैं ॥
प्रथम कुशासन फिर मृगछाला, ऊपर वस्त्र बिछाते हैं ॥११॥
चित इन्द्रिन की क्रिया रोक, कर मन एकाग्र कराते हैं ।
आत्म शुद्धि को आसन बैठे, योग में वहाँ लगजाते हैं ॥१२॥
धड़ शिर गला बराबर सीधा, रक्खें नहीं चलाते हैं ।
स्थिर होकर किसी दिशाकी, ओर ना आंख उठाते हैं ।
केवल अपनी नाकके टक्के, पर ही आंख लड़ाते हैं ॥
मनको शान्त किये रहते, निर्भय आनन्द मनाते हैं ।
ब्रह्मचर्यव्रत रख संयम में, मन की वृत्ती झुकाते हैं ॥
मेरे आश्रय पर ही बैठे, मुझ में चित्त धराते हैं ॥ १४ ॥

जो योगी मनको नियमों में, लगा सदा युजियाते हैं ।
मेरी शान्ती, संस्थापर, अन्तहि निर्वाण उगाते हैं ॥ १५ ॥
बहुत खाने से योगसिद्धि ना, या सर्वथा न खाते हैं ।
अति सोने का शौक रखें, या जो दिन रात जगाते हैं ॥१६॥
जो नियमित खाते चलते हैं, और उचित कर्मको पाते हैं ।
उचित समय सोवें जागें, दुखनाशक योग रचाते हैं ॥ १७ ॥
जो अपने जीते मन को, निज आतम बीच बिठाते हैं ।
सर्व कामना छिटक जावें, तब सिद्ध उसे ही गाते हैं ॥ १८ ॥
जिन योगिन के चित्त धर्म, और आत्म योग में राते हैं ।
वो निवातस्थान दीप सम रहें, ना चित्त डुलाते हैं ॥१९॥
जब योग की सेवा से रुककर, गति छोड़ चित्त रुकियाते हैं ।
आत्मा से आत्मा को देखें, आत्मा में रहंसाते हैं ॥ २० ॥
जो अनंत सुख अतीन्द्रिय, वस बुद्धि से ग्रहणाते हैं ।
जिसे जानकर स्थिर रहते, तत्व से नहीं हटाते हैं ॥ २१ ॥
जिसको पाकर उससे बढ़िया, लाभ नहीं कुछ पाते हैं ।
उसमें स्थित होने से अति, दुःख भी ना विचलाते हैं ॥२२॥

दोहा—दुःखों के संयोग का, हो वियोग जिस काल ।
उसी दशा को कहे हैं, योगी योग संभाल ॥
निश्चय स्थित चित्त से, करे ना टाल मटाल ।
उस योग अभ्यास में, लगजावें तत्काल ॥ २३ ॥

छं०—संकल्पों से कामना यें, नित नई नई उठ आवें हैं ।
वो सारी जब पूर्ण रूप से, विधिवत छोड़ी जावें हैं ॥
सब ओर से सब इन्द्री मनके, द्वारा नियमित रुकवावें हैं ॥२४॥
होले २ दृढ़ बुद्धि कर, धीरज धर फिरयावे हैं ॥
कुछ भी चिन्ता नहीं करें, और आत्मा में मन लावे हैं ॥२५॥

ये मन चञ्चल अस्थिर हैं, बस जहां तहां को धावें हैं।
तहां तहां से पकड़ कर इसको, आत्मा में बंधवावें हैं ॥२६॥
जिसका मन है पूर्ण शान्त, औ रज गुणभी छिपरावे हैं।
ब्रह्म मई निष्पापी योगी, वो उत्तम सुख पावें हैं ॥ २७ ॥
ऐसे निष्पापी योगी नित्त, आत्मा में लवलावें हैं।
ब्रह्म अनुभव अत्यन्त सुखको, सुखसे ही अपनावें हैं ॥२८॥
आत्म योगी समदर्शी होकर, यों सर्वत्र लखावे हैं।
सभी प्राणियों में मैं हूं, मुझमें सब प्राण समावें हैं ॥ २९ ॥
जो मुझमें सब को देखें और सब में मुझे दिखावें हैं।
उनसे मैं नहीं बिछड़ूं हूं, ना वो मुझसे बिछड़ावे हैं ॥ ३० ॥
सब भूतों में स्थित मुझको, जो एकत्व हो धावे है।
सभी भांति रहते योगी, वो मुझमें ही बरतावे हैं ॥ ३१ ॥
निज उपमा से सुख दुख को जो सब में सब दिखलावे हैं।
हे अर्जुन ऐसे ही योगी, योगी परम कहावें हैं ॥ ३२ ॥

अर्जुन उवाच

मधुसूदन जो आप साम्यके, द्वारा योग बताते हैं।
चञ्चल मन में यह स्थिरता, मुझको नहीं दिखाते हैं ॥
दृढ़ बलवान हठीला चञ्चल, मन यह कृष्ण सतावे है।
वायुसम दुष्कर है रुकना, रोके ना रुकियावे है ॥३४॥
निसंदेह महाबाहु मन, चञ्चल यह थमियावे है ।३५।
कुन्तीसुत अभ्यास और, वैराग से ये भिजावे है ॥३६॥
बिना रुके मन मेरी समझमें, योग महा कठिनावे है।
जीते मन से जतन करो, बस यह उपाय सुझियावे है ॥३७॥
हे कृष्ण जिसे श्रद्धा ता हो, पर जतन नहीं बनयावे है।
योग की सिद्धी पर पहुंचे बिन, मन उसका हटियावे है ॥

उसकी गति क्या होती है, ऐसे अर्जुन बतरावे है।
ब्रह्म मार्ग से भटक जाय, फिर कैसा रूप गठावे हैं।
दोनों से कहीं विचल जाय, और नाना दुःख उठावे है।
बिना सहारे फटे मेघ की, नाईं नाश करावे है॥ ३८॥
दोहा—अहो कृष्ण संशय मेरा, पूरण करिये आप।
तुम बिन और न काटि हैं, संशय वा संताप॥३९॥

श्री भगवान उवाच।

दोहा—यहां वहां उसका कभी, पार्थ न होवे नाश।
शुभ कर्त्ता के दुर्गती, तात न आवे पास॥ ४०॥
छं०—योग भ्रष्टी देहान्त हुवे पर, पुण्य लोक में जाता है।
वहां असंख्य वर्षों रहकर, फिर धनी शुची घर आता है॥४१॥
अथवा बुद्धिमान योगियों, के घर में जन्माता है।
ऐसा जन्म लोक में दुर्लभ, कोई कोई नर पाता है॥ ४२॥
पूर्व देह की बुद्धि को वो संग में लेकर धाता है।
कुरुनन्दन वहां जा करके, फिर सिद्धि का यत्न बनाता है॥४३॥
अवश हुवा भी पूर्व जन्म, अभ्यास योग में लाता है।
योग ज्ञान का जिज्ञासू भी, शब्द ब्रह्म उलिराता है॥४४॥
अमी यत्न कर्त्ता योगी, निष्पाप हुवा विचराता है।
बहुत जन्म में सिद्धी पाकर, पारंगती बनाता है॥ ४५॥
दोहा—तपसी ज्ञानी कर्मि से, योगी है अधिकाउ।
अर्जुन तुम भी योंहि तो, बस योगी होजाउ॥
और योगिन में भी उसे, सब से बढ़कर मान।
श्रद्धितचित्त लगाय कर, मुझको भजे सुजान॥
इति श्रीमद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु, ब्रह्मविद्यायां योग
शास्त्रे श्री कृष्णार्जुन सम्वादे दयालु छन्दप्रद्यात्मक
अभ्यास योगोनाम षष्टमो अध्यायः समाप्तः।

अध्याय—७

ज्ञानविज्ञान-योग

श्री कृष्ण उवाच

दोहा—मुझमें चित्त लगाय कर, मेरा सहारा पाय ।
इस योग का आचरण, पारथ करो बनाय ॥
पूर्ण रूप निःशंक हो, तू ले मुझको जान ।
सोही विधि तुझ से कहूं, सुनले धरके ध्यान ॥ १ ॥

छं०—अनुभव युक्ती सहित ज्ञान, को मैं तुझसे बतलाता हूं ।
जिसे जान लेने पर यहां, फिर कुछ नहीं ज्ञान बचाता हूं ॥२॥
मनुष्य सहस्रों में से कोई, यत्निक सिद्धि लखाता हूं ।
यत्निक सिद्धों में भी कोई, तत्व वेत्ता पाता हूं ॥ ३ ॥
पृथ्वी, जल, अग्नी, वायु, नभ भूतस्थूल कहाते हैं ।
रूप, स्पर्श, गंध, रस, शब्दों को सूक्ष्म दिखलाते हैं ॥
मन, बुद्धी और अहंकार को, भी इनमें ही मिलाते हैं ।
आठ भांति की मेरी प्रकृति, पृथक २ समझाते हैं ॥ ४ ॥

दोहा—यह तो जड़ प्रकृती कही, इससे अन्य यूं जान ।
जीव भूत दूसरी प्रकृती, चेतन चवे पिछान ॥ ५ ॥
यही प्रकृती जगत का, महाबाहू आधार ।
सब जो इसको जानले, उसी का बेड़ा पार ॥ ६ ॥

छं०—यही समझले सब प्राणी, इन दोनों से उपजावे हैं ।
मुझसे सर्वलोक उत्पन्न होंय, और मुझमें आन समावेहैं॥
अहो. धनञ्जय मुझसे आगे, और नहीं कुछ पावें हैं ।
मणिगण सूत पिरोये सम, सब मुझमें ही रहआवें हैं ॥ ७ ॥
रवि-शशि में परकाशरूप, और जल में रस कहलाता हूं ।
सब वेदों में ओंकार, आकाश में शब्द धराता हूं ॥

और योगिन में महापुरुष, रहकर के काज बनाता हूं ।
हे कुन्तीसुत सब सूतोंमें, निज मुख्य रूप दिखलाताहूं ॥८॥

दोहा—शुद्ध गन्ध हूं भूमि में, सब प्राणिन में प्रान ।
अग्नी के बिच तेज हूं तपसिन में तप ध्यान ॥९॥

छं०—हे अर्जुन सब जीवों में, तू बीज सनातन जान मुझे ।
तेजस्विन में तेज रूप, और बुधों में बुद्धीमान मुझे ॥१०॥
बलवानों में काम राग से, बचा हुवा बल ठान मुझे ।
धर्म्म अनुसार काम सर्वत्र, सब भूतोंमें मान मुझे ॥११॥
सत्-रज-तम-गुण के स्वभाव, तू जान ये मुझसे आये हैं ।
मैं उनके आधीन नहीं, मैंने स्वाधीन बनाये हैं ॥ १२ ॥
इन तीन गुणों के बने हुवे, भावों से सब जग छाये हैं ॥
इनसे परे मुझे अविनाशी, को ना कोई लखाये हैं ॥१३॥

दोहा—दैवी माया है मेरी, तीन गुणों की घाट ।
जिस के आगे क्या कहूँ, बड़ी कठिन है बाट ॥
जो शरणागत है मेरी, मुझ में चित्त धराय ।
इस माया को वो तरें, कहता हूं समझाय ॥ १४ ॥

छं०—पापी मूढ अधम नर जिनका, माया ने सब ज्ञान हरा ।
असुर भावमें पहुंचे हैं, और मेरा सहारा नहीं करा ॥१५॥
चार भांति के सुकृति जनों ने, अर्जुन मेरा ध्यान धरा ।
दुःखी-जिज्ञासु-ज्ञानी और धनका लालच जिन्ने भरा ॥१६॥
इनमें ज्ञानी सदा युक्त, अद्वैत भक्त पर वारा है ।
मैं उस ज्ञानीको प्याराहूं और वो भी मुझे पियाराहै ॥१७॥
मेरी समझ में ये सब वर, पर ज्ञानी आत्म हमारा है ।
मुझ सर्वोत्तम गतिको ध्यावे, मेरा तके सहारा है ॥ १८ ॥

ज्ञान क्षेपक

भैया भारतीरे तुझ को समझाऊं हर बार (टेक)

चार तरह के प्राणी मुझ को पूजें है संसार।
भिन्न २ बतलाऊं चारों सुनो ख्याल कर यार ॥ १ ॥

बेटा मरै भूमि छुट जावे जावे कैद मंझार।
या घरवालों मार कूटके घर से देय निकार ॥ २ ॥

और दूसरे वह पूजे हैं जिसे जलन की मार।
किसी तरह मैं भी तो जग में होजाऊं सरदार ॥ ३ ॥

तीसरा पूजे है बस मुझको लालच का भंडार।
चौथा धर्मी ज्ञानी पूजे करदूं बेड़ा पार ॥ ४ ॥

दोहा-बहुत जन्म के अन्त में, ऐसा ज्ञान समाय।
वासुदेव सब में लखे, देवे दुई मिटाय।
ऐसे मुझको पायकर, मुझ में ही मिलजाय।
सो महात्मा तो कभी, देवैं कहीं दिखाय ॥ १९ ॥

छं०-जिनकी बुद्धी इन सब, इच्छाओं ने छिनली जाती है।
निज स्वभाव के झोकों से, इत उत में आ रमजाती है ॥
अन्य देवताओं को नाना, लालच कर पुजवाती है।
विविध भांति के अनुष्ठान, और बरत चरत करवाती है ॥
जो मनुष्य विश्वास सहित, जिस देव को पूजा चाहे हैं।
हम उसको उस सुरके पूजन, में फिर खूब लगाते हैं ॥ २१ ॥
तब वो भक्ती श्रद्धा से, इस पूजन में लग जाते हैं।
मेरा बनाया उसके द्वारा, मन इच्छा फल पाते हैं ॥

दोहा-जिनकी थोड़ी बुद्धि है, फल भी थोड़ा पाय।
देव उपासक देव हों, मेरे मांह समाय ॥ २३ ॥

छं०-अविनाशी सर्वोत्तम नहीं, पर स्वरूप को जाने है।
मूढ मुझे अव्यक्त रूप को, व्यक्त हुवा ही माने है ॥ २४ ॥

छिपे योग माया से मुझ को, ना सब कोई पिछाने हैं।
मूर्ख लोग नहीं कैसे ही भी, अज अविनाशी ठाने हैं ॥२५॥
हे अर्जुन मैं अगले पिछले, अब के प्राणी सब जानूं ।
पर मुझ को ना कोई जाने, मैं ही सब को पहचानूं ॥२६॥
इस संसार में आने पर, मैं सब प्राणिन की गति मानूं ।
इच्छा और द्वेष से अर्जुन, द्वन्दों का होना मानूं ॥२७॥
दोहा—इन द्वन्दों की चाल में, इन को भूला जान ।
मुझ को भूले हैं यों ही, भारत मित्र पिछान ॥
छं०—जिन पुण्यात्मा जीवों के, सब पाप नष्ट हो जाये हैं ।
दृढ़ चित्त से मुझ को भजते हैं, और द्वन्द्वभी तोड़ बगायेहैं॥२८
जो जरा मरण छुटने को मेरा, परम आसरा लाये हैं ।
अखिल कर्म अध्यात्म ब्रह्म को, वोही जीव लखाये हैं ॥२९॥
अधिभूत—अधिदैव—और, अधि यज्ञ जो मुझको जाना है ।
अंतकाल में भी वस दृढ़, चित्तों ने मुझे पिछाना है ॥ ३० ॥
इस अध्याय सातवीं में तो, इतना कृष्ण बखाना है ।
अंतकाल तक भजना मुझको, करना नहीं बहाना है ।
इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायाम् योग-
शास्त्रे श्री कृष्णार्जुन सम्वादे दयालु छन्द पद्यात्मक
भाषा टीका विज्ञान योगोनाम
सप्तमोऽध्यायः समाप्तः ।

अध्याय—८

अक्षरब्रह्म—योग

अर्जुन उवाच

दोहा—पुरुषोत्तम वो ब्रह्म क्या, कर्म अध्यातम कौन ।
अधिभूत अधिदैव को, गतो पिछाने जौन ॥ १ ॥

छं०—अधियज्ञ मधुसूदन तन में, कैसे कौन कहाते हैं।
अन्तकाल इन्द्री जित, फिर कैसे इसे लखाते हैं॥ २॥

श्री कृष्ण उवाच

गाना क्षेपक

कुरुवंशी वीर पियारे, बांधो धीर धीर धीर टेक—
कुन्ती ने दूध पिलाया, पाण्डू ने गोद खिलाया।
इन्द्र ने धनुष चलाया, मारो तीर तीर तीर॥ १॥
दो हाथ करो अब भाई, क्यों कुलकी लाज गंवाई।
अब मौत इन्हों की आई, चीने वीर वीर वीर॥ २॥
तू भरत वंशी कहलोवे, फिर भी इतना घबरावे।
नाहक क्यों देर लगावे, मेटो पीर पीर पीर॥ ३॥
अधिभूतादिक को गाऊं, योगिन की गती लखाऊं।
अर्जुन कह ज्ञान सुनाऊं, नानेर वीर वीर वीर॥ ४॥

छं०—परम ब्रह्म तो अक्षर है, अध्यात्म स्वभाव बताते हैं।
भूत भाव उत्पन्न करैं और, उस यज्ञ को कर्म जताते हैं॥३॥
नाशमान अधिभूत कहावे, पुरुषधि देव बताता हूं।
तन धारिन में श्रेष्ट मैं ही, अधियज्ञ हो पुकारता हूं॥४॥
देह पात पर अंत समय पर, जिसके उर में आता हूं।
इसमें कुछ संदेह नहीं मैं, अपना उसे बनाता हूं॥ ५॥
दोहा—जन जो जैसे भाव को, सुमर २ मर जाय।
उसको उसही भाव में, अर्जुन तू पहुंचाय॥ ६॥

गाना मूलार्थ

इससे तू हर समय पर, मुझको सुमरना लड़ना।
मन बुद्धि मुझको देकर, मुझ में निडर विचरना॥७॥ टेक
अभ्यास के सहारे, हर बिक से मन को मारे।

पर पुरुष दिव्य धारे, मुझमें चितधान धरना ॥ ८ ॥
जग के पुराने शासक, सूरज की सम प्रकाशक ।
सूक्ष्म से सूक्ष्म भासक, सम्पूर्ण ज्ञान फुरना ॥ ९ ॥
संसार भर का दाता, नहीं चिन्तवन में आता ।
तम से भी आगे जाता, उसको ही तू सुमरना ॥ १० ॥
जब अन्तकाल आवे, मन को अचल बनावे ।
फिर भक्ति योग लावे, बल युक्त हो सम्हरना ॥ ११ ॥
दोनों भवों विचाले, मन प्राण को ठराले ।
महा पुरुष को तू पाले, फिर दिव्य रूप धरना ॥ १२ ॥
जो वेद तत्त्व जाने, अक्षर उसे बखाने ।
नहीं राग द्वेष ठाने, उसको है उसमें भरना ॥ १३ ॥
जिसको है चाह भारी, बनते हैं ब्रह्म चारी ।
उस पद की बात सारी, संक्षेपता से बरना
सब द्वार बन्द करले, मन रोक उर में धरले ।
निज प्राण माथे चढ़ले, फिर योग धार थिरना ॥

दोहा—एक अक्षर ब्रह्म ॐ को, बोले मुझे लखाय ।
देह छोड़ जब जात हैं, उत्तम गति ले पाय ॥ १३ ॥

छं०—जो अनन्य चित अर्जुन मुझको, नित्यनिरन्तरध्याता है ।
सो नित्य समाधी वालायोगी, सहजहि मुझे लखाता है ॥१४॥
जो महात्मा मुझ को पहुंचा, परमसिद्ध कहलाता है ।
सो अशाश्वत दुःखालय में, फेर जन्म नहीं पाता है ॥ १५॥
ब्रह्म लोक तक सब लोकों में, अर्जुन आना जाना है ।
मेरे मिलजाने पर फिर भाई किसने जन्म लिवाना है ।१६।
सहस्रयुगी परयन्त एक, ब्रह्मा का दिवस बखाना है ।
विद्वान उसको सहस्रयुगी की एक रात बतलाना है ॥ १७ ॥

दोहा—ब्रह्मा के जब दिवस का, होता प्रातःकाल ।
अव्यक्तरूप से जीव सब, होते देह विशाल ॥
जब ब्रह्मा की रात्री, होती है विकराल ।
उसी ब्रह्म की देह में, लीन होय तत्काल ॥ १८ ॥

छं०—सब भूतों का यह समूह, जब बार बार प्रकटाता है ।
रात हुये पर विवश हुआ, उसही में जाय समाता है ॥१८॥
जब फेर दिवस हो जाता है, तो यह भी फिर जन्माता है ।
इसी भांति यह ब्रह्म देह में, आता है फिर जाता है ॥१९॥
इस अव्यक्त से एक जुदा, और नित्य अव्यक्त कहाता है ।
सब जीवों के नाश हुये पर, भी वो नहीं नशाता है ॥२०॥
यह अक्षर अव्यक्त कहावे, परम गती कह जाता है ।
परम धाम मेरे को जानो, फिर नहीं चक्कर खाता है ॥२१॥

दोहा—सब भूतों का धाम है, व्यापित है संसार ।
बिन अनन्य भक्ति मिले, परम पुरुष कहां पार ॥२२॥

छं०—हे अर्जुन जिस काल में योगी, देह त्याग नहीं आते हैं ।
और जो सो समय बतादाहूं, जिस कालमें फिर आजाते हैं॥२३॥
अग्नि ज्योति शुक्ल पक्ष, और उत्तरायण जो पाते हैं ।
उसमें मेरे ब्रह्म ज्ञानी जन, ब्रह्मांहि जाय समाते हैं ॥ २४ ॥
धुआँ रात और कृष्ण पक्ष, वा दक्षिणायन में जावें हैं ।
चंद्रमसी अर्थात् स्वर्ग को, भोगें हैं फिर आवें हैं ॥ २५ ॥
शुक्ल कृष्ण दो मार्ग जगत के, नियमित्य नित्य कहावें हैं ।
एक से मुक्ती पावें हैं, दूजे से फिर जन्मावें हैं ॥ २६ ॥

दोहा—जो योगी ये पंथ लखे, कभी न मोहा जाय ।
सर्वकाल इस हेतु से, अर्जुन योग कमाय ॥ २७ ॥
वेद यज्ञ तप दान से, जो फल मिले अघाय ।
योगी इसको जानकर, और आगे बढ़ जाय ॥ २८ ॥

सब का कारण रूप जो, सर्वोत्तम अस्थान ।
निर्विकार उस रूप में, मिला लेय भगवान ॥ २८ ॥

अन्त क्षेपक

ऐसी बातों में अर्जुन न आना कभी
और शस्त्रों अलग न उठाना कभी (टेक)
मौका ये जंगका है नहीं लड़कियों का खेल ।
तोरे कर्म ने रथ से उठाकर दिया धकेल ॥
ऐसे रण से न आँखें चुराना कभी ॥ १ ॥
सुत कुल को कभी पीठ दिखाते नहीं देखा ।
मैदान में आकर कभी भागते नहीं देखा ॥
नहीं लड़ने से करना बहाना कभी २ ॥
छत्री की है पहिचान जो संग्राम कसौटी ।
कायर की पर हो जाय कुछक और छुटौटी ॥
नहीं छत्री धरम को मिटाना कभी ॥ ३ ॥
जो तीर वीर नर की कमां से निकल गया ।
वरदान देवता की ज़बां से निकल गया ॥
अरे शस्त्रों को खाली न जाना कभी ॥ ४ ॥

—:o:—

इति श्री मद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योग-
शास्त्रे श्री कृष्णार्जुन संवादे, दयालु, छन्द पद्यात्मक
भाषा टीका अक्षर ब्रह्म योगोनाम अष्टमो
अध्यायः समाप्तः ॥ ८ ॥

अध्याय ॥ ९ ॥

राजविद्याराजगुह्य-योग

श्री भगवान् उवाच

दोहा—गुणों में अवगुण ढूंढने, की तुझको नहीं बान ।
तुही साथ विश्वास के, कहूं गुप्त अति ज्ञान ।
जो इस विधि को जानले, अशुभ कर्म छुट जांय ।
मोक्ष इसी से जान हो, इस में संशय नांय ॥ १ ॥

छं०—यह ब्रह्म ज्ञान ही राज गुह्य, सर्वोत्तम पुण्य कहाता है ।
इस का परिवर्तन नहीं होता, प्रत्यक्ष से जाना जाता है ॥
और सनातन धर्म को अपने, सुख से ही करवाता है ।
दुख सुख इससे दूर रहें, वालों में प्रकाश बनाता ॥ २ ॥
इस धर्म सनातन में श्रद्धा, जो नहीं करके दिखलाते हैं ।
मुझे न पाकर मृत्युशील, संसार में चक्कर खाते हैं ॥ ३ ॥

गाना क्षेपक

तेरे दिल में क्या अर्जुन समाया है (टेक)
कुम्हिलाये, मुरझाये, कुछ फुलको क्यों दाग लगाया है ।
तुम्हारी धुप्प है और ये ढंग बोलो तो ॥
मेरे तो दिल में कुछ और ही उमंग बोलो तो ।
दुश्मन है सामने, ये ढंग बोलो तो ॥
रण में न आई, तुमको उमंग बोलो तो ।
तुमे रञ्जो फ़िकर ने दबाया है (१) तेरे दिल में ॥
राह पहले तो तैंने ही जगाई है ।
फिक्र करता है अब क्या तू लुगाई है ॥
सोचा जब नहीं था कि मेरा भाई है ।

सुर्जादिली आन के रण में यहां दिखाई है ।
राजा इन्दर का बेटा कहाया है (२) तेरे दिल में ॥
उठले लड़ने को नहीं मुझे झिकाते हो ।
रहो फ़िक्र के दरिया में डूबे जाते हो ॥
पानी आंखों में डबाडब भराये जाते हो ।
आप रोते हो मुझे भी रुलाना चाहते हो ॥
मैंने रो रो के दरिया बहाया है (३) तेरे दिल में ॥
आये हैं वीर लड़ने को एक बार उठो शेर ।
तेरे ही हाथ मरने को एक बार उठो शेर ।
करते हो क्यों इन्कार एक बार उठो शेर ॥
मिटती नहीं तकरार यों एक बार उठो तो ।
अर्जुन तैंने ही झगड़ा मचाया है (४) तेरे दिल में ॥
छं०—मुझसे ही यह जगत व्याप्त, और हम अव्यक्त कहाते हैं ।
सब जीव मुझी में रहते हैं, पर हम नहीं जीव कहाते हैं ॥४॥
दोहा—और न रहना ठीक है, मुझमें रहना आन ।
मेरे ऐश्वर योग को, देखो तो अज्ञान ॥ ५ ॥
छं०—सब जीवों का पालन करता, करता नहीं उनमें वास हूं ।
आत्मा अपने को भूतों का, मैं कारण रूप बनाता हूं ॥
जैसे बड़ा नित्य स्थित, वायु सर्वत्र चलाता हूं ।
ऐसेही समझो के सब जीवों, का मैं ही विधाता हूं ॥ ६ ॥
प्रलयकाल सब प्राणी मेरी, प्रकृती में मिल जावें हैं ।
कल्प आदि में कौन्तेय, फिर भी वोही उपजावें हैं ॥ ७ ॥
निज प्रकृती को वश देकर, प्राचीन स्वभाव चलावे हैं ।
जीव समूह विवश करके, हम बारम्बार उपजावें हैं ॥ ८ ॥
दोहा—अहो धनञ्जय कर्म जो, मुझ को बांधें नाव ।
उदासीन जैसा हो, रहता उनके मांय ॥ ९ ॥

छं०–प्रकृती मेरी अध्यक्षता में, सब चराचर उपजाती है ।
इसी हेतु हे कौन्तेय, जग जनती है और खाती है ॥१०॥
मूढ मेरे मानुष तन को, निंदा करता और घाती है ।
मुझ भूत महेश्वर के स्वभाव, को नहीं जाने उत्पाती हैं॥११॥
उनकी आशा फलती नहीं, वे निष्फल कर्म कमाते हैं ।
भले बुरे का ज्ञान नहीं दुर व्यसनों में रम जाते हैं ॥
वे तुरत ही मोहित होजाते, राक्षसी स्वभाव बनाते हैं ।
और आसुरी प्रकृती से, वे मुझको ना कहीं पाते हैं ॥ १२ ॥
दोहा–दैवी प्रकृती को मेरी, जो महात्मा पाय ।
अविनाशी जीवादि लख, भजैं अनन्य मनाय ॥१३॥
छं०–जो लोग सदा मेरी चर्चा, करते और कथा सुनाते हैं ।
दृढ़ संकल्प हुये मुझको, पाने का यत्न लगाते हैं ॥
भक्ति पूर्वक मुझे गाय, मंद्रों में शीश नवाते हैं ।
मेरी उपासना करते हैं, मुझ में नित ध्यान लगाते हैं ॥१४
और लोग तो ज्ञान यज्ञ कर, मेरा उपासन करते हैं ।
कोई एक समझ कोई अलग समझ, कर मुझको उरमें धरते हैं ॥
कोई इस संसार को मेरा रूप, समझ प्रभु वरते हैं ।
बहुत भांति की मेरी मूरती, बनाके उसपै मरते हैं ॥ १५ ॥
दोहा–श्रौत स्मार्तक यज्ञ मैं, औषधि मंत्र स्वधा ।
मैं सामग्री हवन की, अग्नि हवन विधा ॥ १६ ॥
अर्जुन से श्रोता जहां, वक्ता श्री भगवान ।
रण भूमि कुरु क्षेत्र की, और गीता का ज्ञान ॥
छं०–मैं जगत पिता माता धाता, और जानने योग विधाता हूं ।
मैं पवित्र हूं ओंकार, ऋग साम यजु कहलाता हूं ॥ १७ ॥
इन सब संसार की गति मैं हूं, इसको मैं पाल नशाता हूं ।
इसका स्वामी भी मैं हूं, और बुरा भला दिखलाता हूं ॥

सबके रहने का धाम मैं ही, और शरण स्थान मैं ही तो हूं ।
मैं ही हितैषी सब का हूं, और जन्म स्थान मैं ही तो हूं ॥
प्रभव प्रलय स्थान मैं ही, और बीज निदान मैं ही तो हूं ।
सबके जीवन की पूंजी हूं और अव्यय भगवान मैं ही तो हूं ।१८।
दोहा—मैं ही तपाता रोकता, मैंह बर्षाता जान ।
अमृत मृत्यु मैं ही हूं, सत्य असत्य पिछान ॥ १९ ॥
जो तीन वेद के यज्ञ करें, और सोम को खाने वाले हैं ।
यज्ञों कर निष्पाप हुए, और स्वर्ग को जाने वाले हैं ॥
वो पुण्यों के फल स्वर्ग लोक, को पाकर जाने वाले हैं ।
देवताओं के अच्छे २, भोग भुगाने वाले हैं ॥ २० ॥
वह इन बड़े स्वर्ग देशों में, जाकर भोग भुगाते हैं ।
पुण्य क्षीण होने पर फिर, वो मृत्यु लोक में आते हैं ॥
ऐसे ये तीनों वेदों के द्वारा जो धर्म बताते हैं ।
कामनाओं की इच्छा करके, आते हैं फिर जाते हैं ॥ २१ ॥

गाना क्षेपक

अर्जुन सच्चा तोको मैंने सांची बात बताय दई है (टेक)
छोड़ भावना उठो लड़ो बस मन में यही समाय रही है
भीषम से कर लंबा सूबी अब इसकी शामत आ मरणी है ।१।
अश्वत्थामा मेरा कहा जा द्रोण के शिर मंडलाय रही है ।२।
कर्ण का उलटा रथ करवादूं मौत भखाभख खाय रही है ।३।
शकुनी संग दुर्योधन को भी सेना सहित चबाय रही है ।४।
दोहा—ध्यान अनन्य लगाय के, मुझको भजैं उपाय ।
वो नित योगी मांहि हों, योग क्षेम दोउ पाय ॥२२॥
छं०—जो अन्य देवताओं के भक्त, श्रद्धा से पूजन करते हैं ।
वो मेरा ही पूजन करते हैं, अर्जुन पर विधीन धरते हैं ॥२३॥
मैं सब यज्ञों का भोगता हूं, और प्रभु भी मुझको कहते हैं ।
मेरे इस तत्व को नहीं जाने, वे जीते हैं और मरते हैं ॥२४॥

पित्री पूजक पित्र लोक, सुर पूजक सुर-पुर जाते हैं ।
जीवनुगामी जीव लोक, और मेरे मुझ को पाते ॥२५॥

गान क्षेपक

षोड़शोपचार पूजन

ब्रजराज लाज रखियो द्विज कुल में आगमन की ।
जानो हो सारी भगवन् दासों के उर मंथन को ॥टेक॥
मिथलक सुता ने भेजा द्विज को बुलाने तुम पर ।
सेवक स्वयं पुकारा झांकी दो निज बदन की ॥१॥
सीता के घर पे जैसे जाकर के जल रहे हो ।
मेरे भी घर में वैसे ठैरे अवध बदन को ॥२॥
यमुना ने चरण धोकर जल से पिया तुम्हारा ।
नहीं भूलती है क्षणभर घटना वह जन्म दिन की ॥३॥
जाती न्हिलाने जब दिन और अर्घ देके आये ।
मुझ से भी सेवा लीजे श्री नाथ आचमन की ॥४॥
कुब्जा करी थी कुब्जा चन्दन ही टुक लगाया ।
विश्वास है मुझे भी मेटोगे पीर तन की ॥५॥
चिन्ता का फूल है ये कहीं भूलना न इसको ।
तुलसी के साथ रखना सौगन्ध है सजन की ॥६॥
मंदिर में दीप बाला करता हूँ वर वजाता ।
टुक डाल गल में माला छवि देख श्री रमन की ॥७॥
द्रोपद सुता की खिचड़ी शिवरी के बेर खाये ।
वैसे ही आज पाओ मेरी सुदामा किनकी ॥८॥
यह पान मान का है बस मान इतनी लेना ।
मेरी बात सब बनी रह और निकले सारी मन की ॥९॥
कर्मों के फल को खाओ इच्छा यही बनी है ।
निष्काम तब मैं फल क्या केवल है धुन भजन की ॥१०॥

अब नाथ प्रार्थना है अब अन्तकाल आवै।
सुख नाम कर में माला झांकी हो दुख शमन की ॥११॥
हे प्रभू दयालु रहना निष्काम किंकरों पर।
शर्मा को याद रखना विनती पै अपने जन की ॥१२॥
छं०—पत्र पुष्प फल तोयं भक्ति से मुझ पै आन चढ़ाते हैं।
शुद्ध चित्त से दी हुई वस्तु, मैं इस प्रेम लगाते हैं ॥२६॥
दो०—जो करता खाता है तू, हवन करे या दान।
कौन्तेय जो तप करे, मुझ को देकर मान ॥२७॥
छं०—शुभाशुभी फल के दाता, कर्मों का पाश कटावेगा।
संन्यास योग में युक्त हुआ, तू छुटके मुझमें आवेगा ॥२८॥
मैं सब जीवों में एकसा हूं, नहीं शत्रु मित्र लखावेगा।
निज भक्तों के उर में मैं, और उन को मुझमें पावेगा ॥२९॥
नीच भी सबको छोड़ के कोई मेरा भजन बनाता है।
निश्चय उसका अच्छा हो तो, वो साधू होजाता है ॥३०॥
शीघ्र होय धर्मात्मा वो, और मुक्ति निश्चय पाता है।
कौन्तेय निश्चय जानो, मेरा नहीं भक्त नशाता है ॥३१॥
दो०—शर्ण मेरी जो आवहीं, वैश्य शूद्र या नार।
सभी परमगति पावहिं, इसमें कौन विचार ॥३२॥
फिर ब्राह्मण पुण्यात्मा, भक्तराज ऋषि यथा।
इस अनित्य दुख विनजगत, कोपा मुझे भना ॥
मुझ में चित्त लगायलो, मेरे भक्त बनो।
नमस्कार मुझको करो, मुझ को यज्ञ करो ॥
जो मुझ में तत्पर रहै, मुझको ही हो जाय।
इस विधि नव अध्याय में, हरि ने दिया बताय ॥

इति श्री मद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्री कृष्णार्जुन सम्वादे दयालु छन्द पद्यात्मक भाषा टीका राजविद्या राजगुह्यो योगोनाम नवमो अध्याय ॥९॥

१०—अध्याय

विभूति-योग

श्रीभगवानुवाच

दो०—परम वाक्य मेरो सुनो, महाबाहु फिर आज।
तेरी मुझ में प्रीत है, मैं कहता हित काज ॥१॥

छं०—मम प्रभाव को देव महर्षि, कोई भी नहीं जानें हैं।
मैं कारण आदिदेव ऋषियों का, हूं यों सब निरमानें हैं ॥२॥
जो मुझे अजन्मा और अनादी, लोक महेश्वर मानें हैं।
वोही मनुष्यों में ज्ञानी, और सारे पाप नशानें हैं ॥३॥
अव्याकुलता ज्ञान बुद्धि, और क्षमा सत्य दम शम न्यारे।
सुख दुख जन्म नाश भय, निर्भय और अहिंसा जो धारे ॥४॥
यश अपयश तप दान और, संतोष जो समता, उच्चारे।
पृथक २ यह जीव भाव, मेरे ही से होते सारे ॥ ५ ॥
सात महर्षी चार पूर्व मनु, सबके बड़े कहाते हैं।
मम प्रभाव संकल्प से ये, यों लोक प्रजा उपजाते हैं ॥ ६ ॥
इस मेरी विभूती और योग को, ठीक ठीक जो पाते हैं।
वह निश्चय योग से युक्त होंय, इसमें नहीं संशय लाते हैं ॥७॥

दोहा—मैं हूं सबको जनक हूं, मुझ से जगत चले।
बुध जन ऐसा जानकर, भाव से मुझे भजै ॥ ८ ॥

छं०—मेरे ही में चित्त है जिनका, मुझ पर प्राण गंवाते हैं।
परस्परी उपदेश करैं, और मेरी कथा सुनाते हैं ॥
सदा मगन रहें हैं, मन में मेरा कीर्तन गावें हैं।
मेरी करी हुई लीलाओं, को फिर आप रचावें हैं ॥ ९ ॥
जो इस भांति सदा करते, और मुझसे प्रीति लगाते हैं।
बुद्धि योग देता हूं उनको, जिससे मुझमें आते हैं ॥ १० ॥

कृपा करके उनके ऊपर, इस अंतःकरण बसाते हैं।
ज्ञान प्रज्वलित दीपक से, फिर अंधकार [illegible]
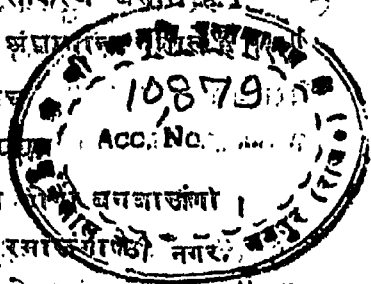
अर्जुन उवाच [illegible]

ज्ञान दीप[illegible]

प्रभु मिलन के काज आज [illegible] बन जाऊंगा।
तीर कमां फैंककर रथ में भस्म रमाऊंगा [illegible]
सींगी सेली धारण करके अलख जगाऊंगा ॥१॥
हरिद्वार मथुरा, काशी सब तीरथ न्हाऊंगा।
जाऊं हिमालय करूं तपस्या देह सुखाऊंगा ॥२॥
बड़े बड़े ऋषियों पर जाऊं खोज लगाऊंगा।
भीतर बाहर सब जग ढूंढू ना हिचकाऊंगा ॥३॥
नित प्रति उसका ध्यान लगाऊं दर्शन पाऊंगा।
प्रभू दयालु शर्मा यों गावैं गाय सुनाऊंगा ॥४॥

दोहा—परमब्रह्म हो तुम प्रभु, परमधाम हो आप।
परम पवित्र बखानि हैं, काटो मम सन्ताप ॥

छं०—आदिदेव अज विभु दिव्य, और शाश्वत पुरुष कहाते हो।
संपूर्ण ऋषियों से स्वामी, यह सम्बोधन पाते हो ॥१२॥
देवल असितदेव ऋषि नारद, व्यास से गाये जाते हो।
और आप भी मेरे से कहते, हो मुझे सुझाते हो ॥१३॥
केशव जो आप बताते हैं, यह सत्य सभी हम मानते हैं।
भगवान् तुम्हारी उत्पत्ति, नहीं देव दानव जानते हैं ॥१४॥
भूत नियंता पुरुषोत्तम, भूतेश जगत पति माने हैं।
हे देव देव निज बुद्धी से, अपने को आप पिछाने हैं ॥१५॥

दोहा—अपनी दिव्य विभूतियां, सब कहिये भगवान्।
इन लोकों में व्यापते, जिनके द्वारा आन ॥१६॥

छं०-योगी राज सदा तुमको, मैं सोच २ कैसे जानूं ।
फिर २ ध्यावें ध्यानेधरूं, और भगवान मैं कैसे पहिचानूं॥१७
तेरा वैभव योग जनार्दन, फिर विस्तृत सुन कर मानूं ।
इस अमृत को पीता २ नहीं अघाता सुर मानूं ॥१८॥

श्री भगवान उवाच

दोहा-दिव्य प्रधान विभूतियाँ, तुझे बताऊं हन्त ।
कुरू श्रेष्ठ विस्तार का, तो कुछ ना है अन्त ॥१९॥
मैं सब जीवों के विषय, रहता आतम मया ।
आदि मध्य और अन्त हूं. गुडाकेश इन का ॥२०॥

छं०-आदित्यों में विष्णु हूं नक्षत्रों में शशि मैंही तो हूं ।
अंशु मान रवि सब ज्योतिन में, पवनमरीची मैंहीतोहूं॥२१॥
वेदों में हूं सामवेद, भूतों में चेतन मैंही तो हूं ।
देवन में हूं इन्द्र मैं ही, और इन्द्रिन में मन मैंही तोहूं ॥२२॥
यक्ष राक्षसों में कुबेर, रुद्रों में शंकर मैं ही तो हूं ।
सुमेरु परबत शिखावान में, वसुओं पावकमैंहीतो हूं ॥२३॥
बलपतियों में स्कंध हूं मैं, झीलों में सागर मैंही तो हूं ।
पुरोहितों में मुख्य वृहस्पति हे गुणनागर मैं ही तो हूं ॥२४॥

दोहा-महर्षियों में भृगु हूं, शब्दों में ओंकार ।
मैं ही हिमाचल गिरों में, यज्ञों में जपसार ॥२५॥

छं०-सब वृक्षों में पीपल हूं, देवर्षि नारद मैं ही तो हूं ।
गंधर्वों में चित्र रथी सिद्ध, कपिल विशारद मैंही तोहूं॥२६॥
सुधोत्पन्न उच्चै श्रवा, घोड़ों में भारत मैंही तो हूं ।
हाथिन में हूं ऐरावत, और नरों में नरपति मैंहीतोहूं॥२७॥
गायों में हूं कामधेनु, सांपों में वासुकी मैंही तो हूं ।
जनको में हूं काम देव, शस्त्रों में वज्र मैंही तोहूं ॥२८॥

नागों में हूं शेषनाग, संयमियों में यम मैंही तो हूं।
जल जीवों में, वरुण मैंही, पित्रों में अर्यम मैंही तो हूं ॥२९॥
दो०—पक्षिन में हूं गरुड़ मैं, मृगों में हूं मृगराज।
नाश करे सो काल हूं, दैत्यों में प्रहलाद ॥३०॥
छं०—श्री राम चन्द्र हूं साक्षात, मैं शस्त्र उठाने वालों में।
भागीरथी में गंगा हूं बस, प्रवाह बहाने वालों में ॥
सब मच्छों में मगर मच्छ हूं, जल में रहने वालों में।
मैं ही पवन कहाता हूं, सब शुद्ध बनाने वालों में ॥
आदि मध्य और अन्त हूं मैं, सब सृष्टि रचाने वालों में।
मैं विवाद में वाद रूप, अध्यात्म कहाने वालों में ॥
विश्वमुखी धाता अहूं, सब शब्द बनाने वालों में।
अक्षय काल हूं द्वंद में ही, सब ठीक सिखाने वालों में ॥
दोहा—सब हरने वालों विषय, मृत्यु मुझको जान।
उत्पति इच्छावान में, उद्भव मुझे पिछान ॥
छं०—नारी जनोंमें मैं ही कीर्ती, मेधा धृती मैं ही तो हूं।
और क्षमा है मेरो रूप श्री, वाकस्मृती मैं ही तो हूं ॥३४॥
साम मन्त्र में वृहत्साम, गायत्री छंद मैं ही तो हूं।
मासों में हूं मार्गशीर्ष, और ऋतु बसंत मैं ही तो हूं ॥३५॥
छल वालों में जुआ तेज, वालों में तेज मैं ही तो हूं।
सत्वों में हूं सत्व मैं ही, और जय व्यवसाय मैं ही तो हूं ॥३६॥
यदुवंशिन में वासु देव, पाण्डवों में अर्जुन मैं ही तो हूं।
मुनियों में हूं व्यास देव, कवियों में शुक्र मैं ही तो हूं ॥३७॥
जीत की रीतमें नीति हूं मैं, और दण्ड हूं दण्ड दिलानेमें।
छुपे हुवों में चुप्प हूं मैं, और ज्ञान हूं ज्ञान बताने में ॥३८॥
हे अर्जुन मैं बीज वोही, जो कुछ है बीज उगाने में।
है सचराचर कोई जीव नहीं, बस मेरे बिना चलानेमें ॥३९॥

ऐसी दिव्य विभूतियों का, कुछ अंत कहीं नहीं पाया है।
यह विभूति विस्तार का मैं, उद्देश मात्र बतलाया है ॥४०॥
जो २ प्राणी ऐश्वर्यवान, श्री मान वा वर दिखलाया है।
है मेरे तेज के अंश से ही, उत्पन्न जान बतलाता है ॥४१॥
दोहा—अथवा इस अति ज्ञान से, तुम्हें पड़ा है क्या।
बस अर्जुन सिद्धान्त को, देता हूं बतला।
मैं ही इस सब जगत को, एक अंश के मांय।
धारण कर ठहरा हुवा, दीन्हा तुम्हें बताय ॥ ४२ ॥

इति श्री मद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योग शास्त्रे दयालुछंदपद्यात्मक श्री कृष्णार्जुन संवादे विभूति योगोनाम दशमोऽध्यायः

११—अध्याय

विश्वरूपदर्शन-योग

अर्जुन उवाच

दोहा—मेरे ही हित के लिये, परम गुप्त यह सार।
भगवत मुझे सुनाय कर दीना मोह निवार ॥
छंद—हे कमल नयन विस्तृत जीवों का, जन्म मरण मैं जानलिया।
और महात्म अक्षय भी तेरा, हृषीकेश पहचान लिया ॥२॥
हे परमेश्वर तुमने अपने को, जैसा कहा सो मान लिया।
सब ऐश्वर्य तुम्हारा देखूं, पुरुषोत्तम यह ठान लिया ॥३॥
दोहा—देख सकूं जो रूप मैं, जो तेरा भगवान।
योगेश्वर दिखलायदो, अव्यय रूप निधान ॥ ४ ॥

श्री भगवान उवाच

छंद—देख सहस्रों सैंकड़ों ही तू, दिव्य रूप मेरे सांई।
नाना रंग आकृतिके हैं, और विविधि भांति दें दिखलाई॥५॥

वसु रुद्र आदित्य अश्वनी, सुत मरुतों की सुघराई ।
हे भारत देख बहुत से पहले, नहीं देखे अचरज भाई ॥६॥
एक स्थान मेरे तन में, तू देख आज यह प्रभुताई ।
सब चराचर जगत देख, फिर और क्या देखे कुरराई ॥७॥
अपनी आंखों से मुझको नहीं, तू देख सकेगा सुखदाई ।
ले दिव्य दृष्टि मैं देता हूं, अब विश्वरूप दे सुझाई ॥ ८ ॥

सञ्जय उवाच ।

दोहा—योगेश्वर हरि ने यहीं, कह करके महाराज ।
अर्जुन को दिखला दिया, विश्वरूप यह आज ॥९॥
छं०—अद्भुत दर्शन थे अनेक, मुख नेत्र बहुत दिखलाते थे ।
दिव्याभूषण थे अनेक, दिव्यायुध बहुत सुझाते थे ॥ १० ॥
माला वस्त्र दिव्य धारे, और दिव्यहि गंध लगाते थे ।
देव अनंत विश्व मुख वाले, सब आश्चर्य भराते थे ॥११॥
आकाश में सूर्य सहस्रों भी, एक बार उदय होकर आवें ।
उस विश्व रूप भगवान की सदृश, अपना कहीं तेज लावें॥१२
उस देव देव के तन में तब, पाण्डव एकत्र जगत पावें ।
मिला हुआ भी बटा हुआ भी, भांति २ का दरसावें ॥ १३ ॥
दोहा—हृष्ट रोम अर्जुन तभी, विस्मय हो सिर नाय ॥
हाथ जोड़ भगवान से, बोल उठा हर्षाय ॥ १४ ॥

अर्जुन उवाच

छंद-भगवान तुम्हारे इस तनमें, सब देवताओंको देखताहूं ।
भांति २ के जीवमात्र सब, समूहों को देखता हूं ॥ १५ ॥
कमल के आसन पर बैठे, ईश्वर ब्रह्मा को देखता हूं ॥
सब ऋषियों को देखताहूं, अच्छे सर्पोंको देखताहूं ॥ १५ ॥
तुम्हें अनन्त रूप से भगवन, दशोंदिशा में देखता हूं ।
और अनेक पेट मुख तुझमें, नयन भुजासें देखता हूं ॥

हे विश्वेश्वर आदि-मध्य, और अन्त नहीं मैं देखता हूं।
विश्वरूप में और कोई, भगवंत नहीं मैं देखता हूं ॥१६॥
मुकुट गदाधारी तुमको, चक्रधारी मैं देखता हूं।
तेज पुञ्ज सब ओरों से चमकन हारी मैं देखता हूं॥
जलती हुई आग सूरज सी, चमक तुम्हारी देखताहूं।
सब ओरसे लख नहीं सकता, आहो दुखियारी देखताहूं॥१७॥
दोहा-परमाक्षर अव्यय तुम्हीं, विश्वके परमाधार।
तुम्हीं मुमुक्षू जनों को, ज्ञानके हो भंडार॥
छंद-तुम्हीं सनातनधर्म के स्वामी, रक्षा करने वाले हो।
तुम्हीं सनातन पुरुष कहाये, करने धरने वालेहो॥१८॥
बहुभुजी तुम आदि मध्य, और अन्त न होनेवाले हो॥
सूर्य चंद्र आंखें तेरी, और वीर्य बढ़ाने वाले हो॥
जलती हुई आग के सदृश, मुख दिखलाने वाले हो॥
आपतो अपने तेज सेही, सब जगत तपाने वालेहो॥१९॥
विश्व पोल सब दिश में फैले, तुम्हीं समाने वालेहो॥
उग्र अनोखा रूपदिखा, त्रैलोक्य कंपाने वालेहो॥२०॥
दोहा-देवताओं के गण किते, शरणतुम्हारी आय॥
डरे हुवे कर जोड़कर, तुम का रहे मनाय।
सिद्ध महर्षिन के समूह, स्वस्ती कह कर आज॥
अच्छी २ विनतियां, करते हैं महाराज॥२१॥
ग्यारह रुद्र बारह भानू, और आठ वसु दहलाते हैं
दो सुर वैद्य विश्वसुर तेरह, साध्य भी बुद्धि नवाते हैं॥
यक्ष पितर गंधर्व देवता, सिद्ध देख थर्राते हैं।
पवन उन्चासों हो तेरे, तन में चक्कर खाते हैं॥२२॥
मुख नेत्र भुजा हैं महाबाहु, लाखों ना गिनती आते हैं।
जांघ पेट पग हैं अनन्त, डाढैं विकराल दिखाते हैं॥

इस विकट रूप को देखके सारे, लोक विकल होजाते हैं।
मेरी भी है दशा वही, अब मुझको भी घबड़ाते हैं ॥२३॥

दो०—विष्णु यह तन आपका, छूता है आकाश।
रंग बिरंगा हो रहा, करता पूर्ण प्रकाश ॥

छं०—बड़ी २ आंखें तेरी, स्वामी यह आगसी जलती है।
मुंह फटे हुयों को देख २, अब मेरी जान निकलती है ॥
तुझे देखकर मन मेरा, घबड़ाता है ना चलती है।
भगवान शान्ती हो कैसे, अब क्षण २ धीरज ढलती है ॥२४॥
मौत की आग धधकती सो, मुख में ये डाढ़ डराती हैं।
नहीं शान्ती पाता हूं, और दिशा न देखी जाती हैं ॥
हे भरे जगत में रहने वाले, अब नहीं पार बसाती है।
हो प्रसन्न जगन्नाथ तुम्हारी, क्रोड़ा मुझे सताती है ॥२५॥

दो०—और यह सब धृतराष्ट्र सुत, सब राजों के साथ।
भीष्म द्रोण और करण भी, पड़े हैं मुख में नाथ ॥
वीर हमारे भी सभी, बड़े बड़े बलवान।
तेरे मुख में आन कर, पाते हैं कल्यान ॥२६॥

छं०—यह तेरे भयंकर डाढ़ों वाले मुख में भाट २ जाते हैं।
कितनों ही के चूर्ण भये, शिर दांतों में टकराते हैं ॥२७॥
ज्यों नदियों के अम्बुवेग, अति सागर सम्मुख धाते हैं।
वैसे ही नरलोक वीर, तब दीप्त मुखों में आते हैं ॥२८॥
अति वेगवंत जैसे पतङ्ग, जलने को दीप बुझाते हैं।
वैसे ही ये लोग तेरे, मुख में गिर मरना चाहते हैं ॥२९॥
आप ही विष्णु क्रूर तेजभर, अग्नि में जगत जलाते हो।
सब ओरसे घेर के लोगों को, प्रज्वलित मुखोंसे खातेहो॥३०॥

दो०—क्रूर रूप तुम कौन हो, मुझे बताओ ज्ञान।
नमस्कार है आपको, हो प्रसन्न भगवान ॥

इच्छा इसके ज्ञान की, तू पहिला है कौन ।
कुछ भी तेरे विषय में, नहीं जानूं हूं मौन ॥३१॥

श्री भगवान उवाच

छंद–मैंही काल हूं लोकों का, बढ़ता हूं नाश कराने को ।
और यहां भी प्रकट हुआ इनसारों के खाजाने को ॥
तेरे बिना योधों पर, जो लड़ने रूठे जिताने को ।
इन सबको खाजाऊंगा, ना बचि है दिया जलाने को ॥३२॥
उठो खड़े हो यश लेलो, इस कारण नाम रखाने को ।
जीत बैरियों को रण में, निष्कण्टक राज भुगाने को ॥
मैंने इन सब को पहिले ही, बस मार दिया हुलसाने को ।
हे सव्य साचि तू निमित्त होजा, विजयी नाम धरानेको॥३३॥

दोहा- द्रोण भीष्म और जयद्रथ, करणादिक सब वीर ।
लड़ने को तुझ से खड़े, मार डाल रणधीर ॥
मेरे मारे पड़े हैं, दुख मत माने जान ।
रण में जीतेगा अवश्य, बैरिन को इस थान ॥ ३४॥

छंद–यह वचन कृष्णके सुन करके, अर्जुन का देह कंपाताथा ।
हाथ जोड़कर नमस्कार कर, चरणों शीश झुकाता था ॥
फिर भयके मारे घबड़ा कर, हरि चरणोंमें गिर जाताथा ।
गद्गद वाणीसे हरिको, फिर ऐसे वचन सुनाता था ॥ ३५ ॥

अर्जुन उवाच

हे हृषीकेश यह उचितहि है, जो जगत तेरा गुण गाता है ।
तुझ से प्रीति लगाता है, और परमानन्द मनाता है ॥
डरा राक्षसों का समूह, यह चारों ओर भगाता है ।
सब सिद्धों का समूह तेरे, चरणों शीश नवाता है ॥३६॥

हे महात्मन आप तेहूं ब्रह्मा से भी बड़े कहाते हो ।
ब्रह्मा भी उत्पन्न किया है, इससे पूजे जाते हो ॥
हे अनन्त देवेश जगत, और सत से परे उचारो हो ।
अक्षय ब्रह्म जगत वासी, तुम अपना रूप दिखाते हो ॥३७॥
दोहा—पुरुष पुरातन हो तुम्हीं, आदि देव भगवान ।
इस संपूर्ण जगत के, आपहि लय स्थान ॥
छं०—जानने योग्य जानने वाले, परम स्थान तुम्हीं तो हो ।
हे अनंत संसार में फैले, सब भगवान तुम्हीं तो हो ॥ ३८ ॥
तुम वायु यमराज अग्नि, और वरुण चन्द्रमा तुम्हीं तो हो।
और कहां तक कहूं प्रभु ब्रह्मा के बाप तुम्हीं तो हो ॥
सहस्र बार है नमस्कार, फिर नमस्कार मैं करता हूं ।
बार २ है नमस्कार, फिर नमस्कार मैं करता हूं ॥ ३९ ॥
आगे पीछे नमस्कार, फिर नमस्कार मैं करता हूं ।
सभी दिशों से नमस्कार, फिर नमस्कार मैं करता हूं ॥
तेरी शक्ती है अनन्त फिर, नमस्कार मैं करता हूं ।
बलभी तेरा है अनन्त, फिर नमस्कार मैं करता हूं ॥
सब में व्यापक है तूही, फिर नमस्कार मैं करता हूं ।
याकत नाम सब है तूही, फिर नमस्कार मैं करता हूं ॥४०॥
दोहा—स्तुत करी मैंने तेरी, महिमा जानी नाथ ।
स्नेह मित्रता में रहा, किया अनादर हाय ॥
कृष्ण सखा तुमको कहा, यादव तुम्हें कहा ।
हाय ढिठाई से मैंने, बड़ा अनर्थ किया ॥ ४१ ॥
छं०—खेलने सोने बैठने में, जो खाने में अपमान किया ।
सभा में या एकान्त में भी, भगवान तुम्हें तिरस्कार किया॥
मैं क्षमा कराना चाहता हूं, यह बुरा किया जो मानकिया।
हे अप्रमेय अब क्षमा करो, अनजान किया या जानकिया॥४२

क्यों तूही ईश्वर लोक पिता, संसार से पूजा जाने को ।
है गुरुवों का भी गुरु तूही, सब अद्भुत तेज दिखलाने को ।
तीन लोक में नहीं दूसरा, तेरी बराबर आने को ।
बढ़कर तो कोई क्या होगा, जब आगे पाँव उठाने को ॥४३॥

दोहा—साष्टांग दंडौत कर, तुम्हें मनाऊं नाथ ।
आप पूजने योग्य हैं, करिये मुझे सनाथ ॥

छंद—ज्यों बापका बेटा खोटकरे, पर बाप न दण्ड दिलाता है।
और मित्र से मित्रको हानीहो, पर मित्र न उसे सताता है॥
जैसे प्यारे का दोष कभी, प्यारे के उर पच जाता है ।
क्षमा करे है जैसे वो, वैसे ही सेवक चाहता है ॥ ४४ ॥
जो पहिले कभी नहीं देखा, वो देख के मैं हरषाता हूं ।
पर रूप भयङ्कर देख तेरा, मन में बहु कांपा जाता हूं ॥
हे सर्व जगत में रहने वाले, हो प्रसन्न भय खाता हूं ।
वो सोहनी सूरत दिखलादो, देवेश मैं तेरा ध्याता हूं ॥४५॥

ज्ञान दीपक

प्रभो वोही मोहन रूप दिखाव (टेक)
मोरमुकुट मकराकृत कुण्डल श्रुतियन लट लटकाव ।
मुरली अधर धरो मुरलीधर स्वकरि शार्ङ्ग डुलाव ॥१॥
केशर तिलक त्रिभंगललित छबि मस्तक अलिकप्रभाव-
हीरो चिबुक नासिका मोती मन्द मन्द मुसकाव ॥२॥
कट काछिनी पचरङ्गी काछो पीताम्बर फहराव ॥
मणिमाणिक बैजन्ती माला कङ्कण रतन जड़ाव ॥ ३ ॥
चान्दीपटका लाल दुपट्टा किलकिलाओ बहु भाव ।
अरुण पादुकापर पदपङ्कज धनो शीश निवाव ॥ ४ ॥

दोहा—मुकुट गहा धारन लिये, लिये सुदर्शन हाथ ।
वोही दरश करायदो मेरे को यदुनाथ ॥

सहस्रभुजी इस रूप को, शीघ्रहि अस्त करो ।
चतुर्भुजी वो रूप तुम, फेरहि नाथ धरो ॥ ४६ ॥

श्री भगवान् उवाच

छं०—हे अर्जुन मैंने प्रसन्न हो, अनुपम तेज बढ़ाया है ।
निज योगसे अपना परमरूप, तुझको केवल दिखलाया है ।
जो तेजोमय सब जगरूप है, और नाश अनन्त धराया है ॥
यह सबसे पहिलारूप मेरा, तेरेबिन और न पायाहै ॥४७॥
कुरुवीर किसी से ऐसा रूप, मेरा नहीं देखा जाता है ।
मनुष्यलोक का तो क्या कहना, स्वर्ग भी चक्कर खाता है ॥
जो वेदों का नित पाठ करै, वह ब्राह्मण भी चकराता है ।
राजयज्ञभी जो राज के कारण, हो बहु यज्ञ रचाता है ॥
संचय करे सर्वस्व दान, तौ भी नहीं रूप लखाता है ।
योगक्रिया से योगी हो, नहीं ध्यान में ऐसा आता है ॥
शीतकाल गंगा में नित, जो मेरा ध्यान लगाता है ।
घोर तपस्या से भी मेरा, यह नहिं रूप दिखाता है ॥४८॥
दोहा—घोर रूप यह देखकर, दुखी न हो मूढ़ होय ।
निर्भय हो हरखाय के, देख रूप वो मोर ॥ ४९ ॥

संजय उवाच

छं०—श्रीकृष्ण ने अर्जुन को, यों कहकर के समझाया था ।
और महात्मा ने फिर अपना, पूर्ण रूप दिखलाया था ॥
डर हरे हुये को शान्तकिया, फिर सोहनीरूप बनायाथा ।
दर्शन करके फिर अर्जुनने, केशवको वचन सुनायाथा ॥५०॥

अर्जुन उवाच

छं०—हे जनार्दन तेरा यह, नर रूप सोहना भाया है ।
दर्शनकर मन स्वस्थभया, अब ठीकदशा में आयाहै ॥५१॥

श्री भगवान् उवाच

छं०-मैंने मेरा कठिन रूप यह देखा है और घबराया है ।
इस रूपको देखनेकी इच्छा, सुर रखें नहीं दिखलाया है ॥५२॥
यज्ञ दान तप वेद पाठ से, ऐसा नहीं दिखाई दूं ।
जैसा तैंने देखा है, मैं वैसा कहीं सुझाई दूं ॥ ५३ ॥
है परमतपी यह रूप मेरा, जब कैसे मिले बताई दूं ॥
करे अनन्य भक्ती मेरी, उस जन को तो दिखलाई दूं ॥
तत्व ज्ञान के द्वारा मुझमें, वो प्रवेश करजाता है ॥
वोही जान सकता है मुझको, वोही मुझमें आता है ॥ ५४ ॥
मेरे लिये जो कर्म करे, निज गति भी मुझे बनाता है ॥
मेरा भक्त संसार की वस्तु, में नहीं ध्यान लगाता है ॥

दोहा-हे पांडव सब प्राणियों से जो वैर नशाय ॥
वोही मो में पहुंच कर, मुझ में ही मिलजाय ॥ ५५ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योग शास्त्रे श्री कृष्णार्जुनसंवादे दयालु छंद पद्यात्मक विश्वरूप दर्शन योगो नामएकादश अध्यायः ॥ ११ ॥

—:०:—

१२—अध्याय

भक्ति-योग

अर्जुन उवाच

दोहा-ऐसे संतत युक्त जो, भक्त तुम्हारे नाथ ॥
पर गुण की सेवा करें, पूरण हित के साथ ॥
जो अक्षर अव्यक्त का, चिन्तन करते जो ॥
योग विशारद कौन है, हम से बतला दो ॥ १ ॥

जाता सोई आला है, झूंठा जग का नाता है, ये आहारी,
ये दमखवारी, ये आचारी औ मनको समझाने वाले—
जाओजी जाओ धिक धिक कायता दिखलाने वाले ॥ ४ ॥

श्री भगवान उवाच

छंद-जो सदा भक्तमें लगे हुये, मुझमें ही चित्त लगाते हैं ।
और परम श्रद्धा से मेरी, सेवा अधिक बनाते हैं ।
चाहे किसी रूप को मेरे, सर्वस्थान लखाते हैं ।
अर्जुन सब से अधिक उन्हें, हम योगी जन बतलाते हैं ॥ २ ॥
जो अक्षर अव्यक्त चिन्ह से, रहित मुझे पहिचाने है ॥
सर्व व्यापी ध्यानमें आने, वाला मुझे न जाने है ॥ ३ ॥
माया का अवधक अचल, औरनित्यहि मुझको माने है ।
सब इन्द्रिन को रोक सभी, जीवोंको एकसा माने हैं ॥ ४ ॥
दोहा-सब जीवों के लाभ में, करते हित की चाल ।
इस उपासना से मेरी, मुझ में आय समात ॥
छं०-अव्यक्त में चित्त लगाने वाला श्रम को बहुत उठाता है ।
क्योंकि देहधारी इस अक्षर की, गति कठिनाई से पाता है ॥५॥
और जो मुझमें सर्व कर्म को, त्याग शरण में आता है ।
किसी ओर नहीं जाने वाले, योग ध्यानसे पाता है ॥ ६ ॥
सर्व चाहने वाले को अपने, मैंभी तो ऐसा हो भाता हूं ।
जन्म मरण के सागर से, बस शीघ्रहि पार लगाता हूं ॥७॥
यों मुझमें मन लगालू बुद्धी, फिर पाछे समझाता हूं ।
फिर मुझमें ही सदा रहेगा, निश्चय बात बताता हूं ॥८॥
दोहा-जो तू चित्त स्थिर नहीं, कर सकता है तात ।
और न मुझ में लग सके, तो बतलाऊं बात ॥
अर्जुन योगाभ्यास से, तू मुझको पहिचान ।
मुझमें मिलने के लिये, इच्छा कर हर आन ॥ ९ ॥

छं०—अभ्यास भी जो नहीं कर सका, तो मेरे कर्मों में डटजा।
मेरे लिये कर्म करते करते, मेरी सिद्धी पटजा ॥ १० ॥

गाना क्षेपक

कर्म को क्यों बिसराय रे अर्जुन

कर्म फलों को छोड़ के प्राणी जो निज कर्म कमाय।
सोई संन्यासी योगी जग में कर्म छोड़ने नाय ॥ १ ॥
जिसको मैं संन्यास कहा है योगही कर्म कहाय।
जिसने संकल्पों को त्यागा सो योगी ठहराय ॥ २ ॥
योग में उपासै चाहो योगी, कारण कर्म कहाय।
पूरा योगी होजाने पर, शम कारण बतलाय ॥ ३ ॥
मन जीता है जग में जिसने, दुख सुख सम करलाय।
परमानन्द मगन हो मनवा, भवसागर तरजाय ॥ ४ ॥

छं०—ये भी जो नहीं कर सकता, तो मेरे योग में ही डटजा।
मन को अपने वश में कर, सब कर्मों के फल से छुटजा ॥ ११ ॥
अभ्यास से ज्ञान की उत्तमता, और ज्ञानसे ध्यान बताते हैं।
ध्यान से कर्म फलों का त्यागन, त्यागसे शान्ति पाते हैं ॥ १२ ॥
जो किसी से बैर नहीं करते, और सबको मित्र बनाते हैं।
सब जीवों पर दया करें, और क्षमा शील कहलाते हैं ॥

दोहा—अहंकार को फेंकदें, ममता को दें त्याग।
दुख सुख दोनों सम किये, करैं नित्य अनुराग ॥ १३ ॥

छं०—संतोष सदा रखने वाला, योगी संयमी ठहराता है।
दृढ़ निश्चय करके मुझमें, मन बुद्धी को ले आता है॥
ऐसा भक्त मेरा जग में, मुझसे जो प्रीति लगाता है।
मेरा पियारा भक्त मेरे, घर में ही आन बसाता है ॥ १४ ॥
जिससे कोई प्राणी दुखी नहीं, और किसी से दुख नहीं पाता है।
हर्ष शोक भय डाह रहित, वो मेरा मित्र कहाता है ॥ १५ ॥

उदासीन अनपेक्ष शुची, और दुःख व्यथा जिन पाता हैं।
सर्वारम्भ परित्यागी, वो भक्त मुझे वश भाता है ॥ १६ ॥

दोहा–इच्छा द्वेष और शोचना, हर्षित भी ना होय।
शुभाशुभो को त्यागदे, भक्त मनभावन होय ॥ १७ ॥

छंद–मान अपमान शत्रु मित्रों को, जो जन यकसा जानते हैं।
सर्दी गर्मी सुख दुख में उन संग न कोई ठानते हैं ॥ १८ ॥
निन्दा स्तुती बराबर समझें, चुप हुये जो मानते हैं।
और संतुष्ट हुए विचरैं, जो कहीं ना छप्पर छानते हैं ॥
ऐसे स्थिर मतिवाले नर, वह मुझको पहिचानते हैं ॥
वह भक्तियुक्त भारी प्यारी, और वह भी मुझको जानते हैं ॥ १९ ॥
जो इस धर्म अमृत को पीते, जैसा कहा दिखलाते हैं।
मेरी श्रद्धा से पूजा कर, उत्तम भक्त कहलाते हैं ॥

दोहा–अर्जुन जितने भक्त हैं, यद्यपि सारे मान्य।
तो भी ऐसे भक्त को, मेरा रूप दिखान ॥ २० ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां श्रीकृष्णार्जुन सम्वादे दयालुचन्द पद्यात्मक भाष्ये भक्तियोग नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

१३–अध्याय

क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभाग-योग

श्री भगवान् उवाच

दोहा–कौन्तेय इस देह को, कहते क्षेत्र बखान।
और जो इस को जानता, कहैं क्षेत्रज्ञ सुजान ॥ १ ॥

छंद–हे भारत सब क्षेत्रों में, मुझ को क्षेत्रज्ञ पिछाना कर।
क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ ज्ञान को, मेरा ही ज्ञान माना कर ॥ २ ॥

यह क्षेत्र जो है जैसा भी है, जैसे विकार का आकर।
जिससे जैसा प्रभाव जो उसका, सुन संक्षेपसे गाकर ॥ ३॥
जो ऋषियों ने भांति २ से, नाना छन्दों गाया है।
भिन्न २ उत्तम भावों से, शिष्यों को समझाया है॥
फिर निश्चय दिखाने वाले, ब्रह्म सूत्रों गाया है।
पद २ में है किया प्रकाश, और विविध भांति दरशाया है॥४॥
दोहा—महाभूत दश इन्द्रियां मन बुद्धी अहंकार।
पंचेन्द्रिय गोचर सहित, ले अव्यक्त विचार ॥ ५ ॥
छं०—इच्छा द्वेष सुख दुख शरीर, चेतन और धीरज का धरना।
ये सब विकार कहाते हैं, संक्षेप से तुमसे हैं वरना ॥ ६ ॥
मान घाव अभिमान न करना, धोखा किसी से ना करना।
दुःख न पहुंचाना जीवों को, क्षमा ही करना ना टरना ॥
सीधा सादा चलन बनाना, कभी न इतरा कर चलना।
कभी पढ़ाने वाले गुरुओं की, सेवा से ना टलना ॥
शुद्धाचार विचार से रहना, कभी भी करना डुल डुलना।
और अटल रहना अपने में, विकल हुआ भी डुल मुलना ॥
दोहा—मन घोड़ा चंचल बड़ा, छूटी जाय लगाम।
इसका ही वश रोकना, है वीरों का काम ॥ ७ ॥
छं०—इन्द्रिय को अपने विषयों में, कभी नहीं जाने देना।
त्रैलोकी का राज्य भी हो, अभिमान नहीं आने देना ॥
जन्म मरण और रोग बुढ़ापे के, दम को जाने देना।
दुःख रूप दोषों से दुःखित, देह को दिखलाने देना ॥ ८ ॥
पुत्र स्त्री धन धाम के पीछे, बिरथा जन्म नहीं खोना।
बुरे भले के मिल जाने पर, ना हंसना और ना रोना ॥९॥
अनटूट अनन्य मेरी भक्ति का, मेरे मन बीज बोना।
इकले रहो भजो मुझको, और जन समूह से कर कोना॥१०॥

दोहा-तत्व-ज्ञान के अर्थ का, करना परम विचार।
और अध्यात्मिक ज्ञान में, लगे रहो निर्विकार॥
इस प्रकार यह ज्ञान जो, कहा है मैंने आज।
इस से जो अतिरिक्त है, सो अज्ञान समाज॥ ११॥

छं०-जो जानने योग्य सो कहता हूं, जिसे जान अमर होजाता है।
सो अनादि है परमब्रह्म शाश्वत, और अक्षर कहाता है॥१२॥
सब ओर से हाथ पांव वाला, सब ओर आंख दिखलाता है।
सब ओर में शिर मुख हैं जिसके, सब ओर से कान हिलाता है॥
संसार की सारी वस्तुओं में, वही व्यापक हुवा रमाता है।
यह स्वरूप है मुक्त जीव का, मुक्त हुआ जब पाता है॥१३॥
सब इन्द्रिन के गुण को देखे, सब इन्द्रिन को भी छुड़ाता है।
नहीं आसक्त किसी पै वो, पर सारे रूप धराता है॥

दोहा-सतरज तम गुण रहित है, गुणों का भोगन हार।
अर्जुन सब समझा दिया, देखो आंख पसार॥ १४॥

छं०-वो आत्मा भूतों के भीतर, और बाहर रूप दिखावे है।
चलता हुआ सा दीखे है, पर अचलों को शर्मावे है॥
छोटे से भी छोटा है, यो जानने में नहीं आवे है।
अज्ञानी से दूर रहै, ज्ञानी को निकट दिखावे॥ १५॥
ना प्राणियों में कुछ बटा हुआ, पर बटा हुआ सा भाता है।
सब जीवों का पालन करने, वाला, वो माना जाता है॥
संसार के सारे जीवों का, सब वोही एक विधाता है।
फिर अंत में नाश करे सोही, संहारों का संहारता है॥१६॥

दोहा-ज्योतियों में वो ज्योति है, अंधकार से दूर।
वही जानने के लिये, एक वस्तु भरपूर॥

छं०-वही जानने का फल है, और ज्ञान स्वरूप कहाता है।
सब के उर में बैठा २, वो सारे काज बनाता है॥ १७॥

ज्ञान ज्ञेय और क्षेत्र को यों, संक्षेप से गाया जाता है।
इन्हें जान कर भक्त मेरा, मम मेरे भाव में आता है ॥१८॥
प्रकृति और पुरुष दोनों, ही सदा से रहते आये हैं।
गुण विकार को जान प्रकृति, ने दोनों उपजाये हैं ॥ १९ ॥
कारण कार्य के हेतु भी तो, प्रकृति ने जन्माये हैं।
दुःख सुखादि भोगने में, कारण सब पुरुष कहाये हैं ॥ २० ॥
दोहा—पुरुष प्रकृति में बसा भूल जाय सब बात।
प्रकृती गुण सब गुणन को, भोगे है दिन रात ॥
देयक गुण संयोग से, प्रबल जीव हो जाय।
नीचों ऊंची योनियों में, यूं चक्कर खाय ॥ २१ ॥

गान रूपक

यहां लाया था अर्जुन लड़ाने को।
लगा आंखें मुझे अब दिखाने को ॥ टेक ॥

तुझे समझाया तात, नहीं माने है बात, करके दो २ अब हाथ, मिट्टी करता औकात तेरे धोरे तो बैठा मनानेको १।
रण में चली को यार, अब रहना है यार, प्यारे हिकमत न हार, दीजे कायरता डार, और आयेगा को समझानेको ॥२॥
तूतो भारत की शान, जतन पावेगा मान, तजे येसो सुजान, तोने आये हैं प्राण, इन्हें पैदा हुआ तू मिटाने को ॥ ३ ॥
दिलकी कमजोरी छोड़, रखके धीरता मोड़, शीश एक एक का तोड़, कहां रहना लिपाड़, यहां समझाना शर्नादिखानेको,
यहां लाया था अर्जुन लड़ाने को ॥ ४ ॥

छं०—इस शरीर के भीतर रह, करके भी पुरुष नियारा है।
देखने वाला है सब को, और मंत्र के देने वारा है ॥
पालन करने हारा है, और वही भोगने हारा है।
और महेश्वर है सबका, परमात्मा नाम पुकारा है ॥ २२ ॥

ऐसे पुरुष प्रकृति को, जो गुणों सहित लख जाता है ।
सब प्रकार से रहता भी, वो फेर जन्म नहीं पाता है ॥२३॥
कोई आत्मामें ही आत्मासे, आत्मा का ध्यान लगाता है ।
कोई ज्ञानयोग से देखे है, कोई कर्मयोग का ध्याता है ॥२४॥

दोहा—जो ऐसा नहीं जानता, कहीं कथा सुन जाय ।
सुन करके वैसा करें, जैसे व्यास बताय ॥
ऐसे श्रोता कथा के, जो सुनने को जात ।
पापण कछु संसार से, वो अवश्य तरजात ॥ २५ ॥

छंद—चर और अचर जीव जितने, अर्जुन संसार में आते हैं ॥
ज्ञान क्षेत्र क्षेत्रज्ञ के मिलने, पर निज रूप बताते हैं ॥२६॥
सब भूतों में सम बैठे, जो परमेश्वर को पाते हैं ।
भूतनाश पर आत्मनाश जो नहीं देखें दरशाते हैं ॥ २७ ॥
जो ईश्वर को सम देखा, सर्वत्र समान लखाते हैं ।
वो आपसे आपको ना मारें, इसलिये परमगति पावैं हैं ॥२८॥
जो पुरुष समझता है सारे, प्रकृती ही काम करावे है ।
आत्म अकर्ता देखे है, वो ही परमार्थ बनावे है ॥ २९ ॥

दोहा—जीवों को जिस काल में, भिन्न दशा दिखलाय ।
उन जिनसे एक दशा में, देखे और हर्षाय ॥
और सभी प्रकृति विषय, माग बीच विस्तार ।
स्वयं ब्रह्म में पा लिले, हो भवसागर पार ॥ ३० ॥

छंद—अर्जुन परमात्मा निर्गुण है, अव्यक्त अनादि कहाता है ।
और शरीर में रहकर भी कुछ, करता नहीं छिपाता है ॥ ३१ ॥
नभ सूक्ष्म सुवासमें जैसे, रहता नहीं आप लिपटाता है ।
आत्मा सब तन में बैठा, वैसे ही नहीं सनाता है ॥ ३२ ॥
एक सूर्य सारे जगमें, जैसे प्रकाश दिखलाता है ।
ऐसे सारे क्षेत्रमें रहकर, हे अर्जुन चमकाता है ॥ ३३ ॥

ज्ञान चक्षु से क्षेत्र और, क्षेत्रज्ञ ज्ञान जो पाता है ।
जो जीवों से प्रकृति अलग, है ऐसा आप लखाता है ॥
दोहा-इस प्रकार जो देखते, देह देही का भेद ।
परम ब्रह्म उसको मिले, पाय न कोई खेद ॥ ३४ ॥

इति श्री मद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
श्रीकृष्ण अर्जुन संवादे दयालुकृत पद्यात्मक
योग शास्त्रे क्षेत्रक्षेत्रज्ञ विभागयोगोनाम
त्रयोदश अध्यायः ॥ १३ ॥

—:o:—

१४—अध्याय

गुणत्रय विभाग—योग

श्री भगवान उवाच

दोहा—फिर सब ज्ञानों के विषय, उत्तम ब्रह्म ज्ञान ।
अर्जुन तुझ सेती कहूं, सुनले धरके ध्यान ॥
जिसे ज्ञान करके सभी, जितने मुनि संसार ।
परम सिद्धि को पायकर, भये भवसागर पार ॥ १ ॥
छंद-इसी ज्ञान के पीछे पड़कर, मम स्वरूप पा जाते हैं ।
सृष्टी आदि सृष्टिमें जन्म लेंय, और प्रलयमें व्याकुल पातेहैं ॥२॥
महत् ब्रह्म योनी मेरी, उसमें हम गर्भ धराते हैं ।
हे भारत सब जीवों को, हम उसही से उपजाते हैं ॥ ३ ॥
हे कौन्तेय सब योनियोंमें, जो जो शरीर जन्माते हैं ।
प्रकृति उनकी माता है, बीजद हम पिता कहाते हैं ॥ ४ ॥
महा बाहु सत रज तम गुण, ये प्रकृति रूप बनाते हैं ।
उस अविनाशी परम पुरुषको, देहन बीच बंधाते हैं ॥ ५ ॥

गाना क्षेपक

चिन्तवन ब्रह्मतत्व का करलीजे एकदिन काया छीजे॥टेक॥
ब्रह्म से जीव जगत में आता है, पल तत्व पाता है॥
गर्भ में माता के जब जाता है, मन में घबराता है। जब
उलटा लटकाया जावे, फिर वो हर से हेत लगावे॥ त्राहि
त्राहि कर दाहा खावे, तुम बिन स्वामी कौन बचावे।
मुझे तुम्हारी आस, काट दो पाश, ताप का त्रास। नाथ
बाहर कीजे, एक दिन काया छीजे। चिन्तवन ब्रह्म॥ १॥
प्रतिज्ञा कर कर से बाहर आवे, सुध बुध सब बिसरावे।
खाट पर पड़ा पड़ा चिल्लावे, किसको बिथा सुनावे॥
मात कहै मेरा बहू बुढ़ेरा, मीत कहै दिन आया नेड़ा।
तरुण भया तिरिया ने घेरा, भूल गई अब मेरा तेरा॥
भूल गया औसान कहां भगवान। अरे नादान, राम रस
भर पीजे, एक दिन काया छीजे॥ चिन्तवन॥ २॥
अरे तू कौन कहां से आया है इतना गरबाया है। कहै मेरे द्वारा
सुत माया है। किसने बहकाया है। जान मानले कहन
हमारा, तुम किसके और कौन तुम्हारा॥ छोड़ जगत का
द्वंद पसारा, काहे को हरिनाम बिसारा। श्री दूल्ह सति-
नंद, समझले गोविंद॥ सच्चिदानन्द नाम में तन भीजे, एक
दिन काया छीजे, चिन्तवन॥ ३॥
जिसे तू माता पिता बताता है सब झूठा नाता है।
संग में कोई भी ना जाता है, तनतक रह जाता है॥
देह छोड़कर जीव सिधारे, रोते रह गये घर के सारे।
बिगड़ी को अब कौन संवारे, इसपर भी हरिनाम बिसारे॥
धरनी बारंबार जगत को तार, नाम आधार। इसी में
चित दीजे, एक दिन काया छीजे॥ चिन्तवन॥ ४॥

दोहा-उनमें सतगुण विमल है, और प्रकाशक जान ॥
बिना उपद्रव है वोही, कहना मेरा मान ॥
सुख का लोभ दिखाय कर, ज्ञान संग करवाय ॥
निष्पापी यह शुद्ध गुण, यों देता बंधवाय ॥ ६ ॥

छं०-यही रजोगुण तो तृष्णा, इन्हीं धन धाम कराता है ।
धनदौलत झड़कीली वस्तु, दिखा दिखा ललचाता है ॥
सब इन्द्रिन के विषयों में, येही तो प्रीति लगाता है ।
इसे जान सब जीवों को, कर्मों के संग बंधाता है ॥ ७ ॥
यही तमोगुण सब जीवों को, ज्ञान भुलाने वाला है ।
अज्ञान से ये उत्पन्न हुआ: अज्ञान बढ़ाने वाला है ॥
निद्रा आलस में लाकर, यह धक्का देने वाला है ॥
जड़ता करके जीवों को, बुद्धी हर लेने वाला है ॥ ८ ॥

दोहा-सुख में सत्व की जीत हो, रजगुण करम कराय ।
ज्ञान तमोगुण ढांप कर, जीवको दे भिरमाय ॥ ९ ॥

छं०-सतगुण जब प्रभाव अपना, प्राणी के तन प्रकटाता है ।
रजो तमोगुण दोनों को, अपने बलकर बिठलाता है ॥
और रजोगुण प्रकट भया, जब निज महिमा दिखलाता है ।
सतो तमोगुण दोनों ही का, बल से गला दबाता है ॥
सुनो तमोगुण का प्रभाव, जब यह अपनी पर आता है ।
सतो रजोगुण दोनों को, यों बैंतें मार भगाता है ॥ १० ॥
इस देह के सारे द्वारों पर, जब ज्ञान प्रकाश कराता है ।
उस समय सत्वगुणको जानो, यह अपना राज बढ़ाता है ॥ ११ ॥

दोहा-रजगुण के बढ़ते समय, लालच आय समाय ।
बैठा न खड़ा हो, कारज में लग जाय ॥
विषयों की इच्छा उठे, नहीं शान्ती पाय ।
रजोगुणी लक्षण तुम्हें, भारत दिये बताय ॥ १२ ॥

छं०—जिस समय तमोगुण बढ़ता है, सब अज्ञानी होजाते हैं ।
बिन करने के काम करें, और पड़ा २ सुस्ताते हैं ॥ १३ ॥
कोई नहीं कमाता है, और उलटी बात बनाते हैं ।
हे कुरुनन्दन ठाली पुरुषों में, रहना उनको भावे है ॥

दोहा—जो सतगुण की वृद्धि में, जन मृत्यु होजाय ।
आतम ज्ञानी पुरुष के, शुद्ध लोक को पाय ॥ १४ ॥

छं०—जब रजोगुणी मायामें हों, और मृत्यु आन दबाता है ।
बढ़े काम करने वालों में, दूसरी काया पाता है ॥
और तमोगुण के बढ़ने पर, जो प्राणी मर जाता है ।
मूढ़ योनियों में जाकर, वो नाना क्लेश उठाता है ॥ १५ ॥
अच्छे कर्मों का फल तो, सात्विक और निर्मल होता है ।
रजो गुणी कर्मों के फल से, दुखमें खाता गोता है ॥
तमो गुणी कर्मों* फल से, निशिदिन प्राणी सोता है ।
रहै सदा अज्ञान भरा, और विरथा आयु खोता है ॥ १६ ॥

दोहा—सत गुण से हो ज्ञान हो, रज गुण से हो लोभ ।
मोह प्रमाद अज्ञानता, करे तमो गुण क्षोभ ॥ १७ ॥

छं०—सत गुण में स्थिर रहने, वाले ऊपर को जाते हैं ।
रजो गुणी इस लोक के ही, लोकों में चक्कर खाते हैं ॥
और अधम गुण वृत्तीवाले, जो तामस कहलाते हैं ।
नीचे ही को उतरें हैं, ऊपर को नहीं उठाते हैं ॥ १८ ॥
गुणों के सब अतिरिक्त और, और कर्ता नहीं ज्ञानी जाने हैं।
गुणों से बाहर निज रहना, माने वो मुझमें आते हैं ॥१९॥
इन तीन गुणों से पार हुये, देही जो देह बढ़ाते हैं ।
वो जन्म मृत्यु और जरा दुःखसे, छूटे मोक्ष सजाते हैं ॥२०॥

गाना क्षेपक

भैया भारती रे तुमको समझाऊं इसबार ॥ टेक ॥
ये दुनियां धोखे की टट्टी, कोई नहीं किसी का यार ।
सोई बंधु और कुटुंब कबीला, सब मतलब के यार ॥ १ ॥ भै०
भरी सभा में एक भाई ने, नंगी कीनी नार ।
दूजे फिर जाकर बैठ गए, हाथ जांघ पै मार ॥ २ ॥ भैया०
बारह बर्ष का दिया दिसौटा, घर से दिया निकार ।
साल भरे तक छिपे रहे सब, जुवा विराट दरबार ॥ ३ ॥ भै०
छोड़ा भवन भेज कर तुमरी, करनी चाही छार ।
भीमसेन को जहर पिलाया, धर्मी दम दरकोर ॥ ४ ॥ भैया०

अर्जुन उवाच

दोहा—इन तीनों गुण से रहा, कौन चिन्ह का होय ।
प्रभु कर्म (आचार) क्या तीन गुण, किससे जावें खोय ॥ २१ ॥

श्री भगवान उवाच

छं०—मोह प्रवृत्ति और प्रकाश, पाण्डव ये सब तन आते हैं ।
जाते से नहीं द्वेष करें, जाते को नहीं बुलाते हैं ॥ २२ ॥
वे उदासीन बैठे रहते, गुण जिन को ना विचलाते हैं ।
ये वरतें गुण वर्ते हैं, ना टस से मस हो पाते हैं ॥ २३ ॥
दुख सुख जिसे समान रहैं, और जो आपे में रहता है ।
ढेले पत्थर सोने को, सम एक भाव जो कहता है ॥
शत्रु से ना द्वेष करै, ना मित्रों के संग बहता है ।
निन्दा स्तुती बराबर समझे, बैठा २ रहता है ॥ २४ ॥
दोहा—शत्रु मित्र दो पक्ष और, मान अपमान समान ।
सर्वारम्भ त्याग दे, गुणातीत सोई जान ॥ २५ ॥
छं०—अव्यभिचारी भक्ति योग से, जो जन मुझे मनाते हैं ।
तीनों गुण को छूट जाँय, वह ब्रह्म हुवा ही चाते हैं ॥ २६ ॥

मैं ही ब्रह्म की प्रतिमा हूं, प्रतिमा में ब्रह्म समाते हैं।
अमृत का हूं धाम मैं ही, एकान्त सुख जहां पाते हैं ॥
दोहा—मैं ही सनातन धर्म हूं, अविनाशी अविकार।
जो मुझको भजता रहे, हो भव सागर पार ॥ २७ ॥
इति श्री मद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योग शास्त्रे श्री कृष्णार्जुन संवादे दयालु छन्द पद्यात्मक गुणत्रयविभागोनाम चतुर्दशो अध्यायः ॥ १४ ॥

—:o:—

१५—अध्याय

पुरुषोत्तम-योग

श्री भगवान उवाच

दोहा—ऊपर जिसका मूल है, नीचे जिसकी डार।
वह अव्यय पीपल मेरा, अर्जुन यह संसार ॥
छं०—चार वेद के छंद सभी, पत्ते जिसमें लहराते हैं।
विषयों के अंकुर जिसमें, निज कोमलता दिखलाते हैं ॥
तीनों गुण अपनी खी करके, निश दिन जिसे बढ़ाते हैं।
ज्ञानी जिसका भेद जानके, वेद भाव पा जाते हैं ॥ १ ॥
फैली हुई डालियां उसकी, अद्भुत खेल दिखाती हैं।
कोई ऊपर को जाती हैं, और कोई नीचे को आती हैं ॥
नीचे मृत्यु लोक में आकर, कर्मों से बंधवाती हैं।
फैली हुई जड़ें देखो, यह प्राणी को फंसवाती हैं ॥ २ ॥
दोहा—आदि अंत और ठहरना, रूप न इसका पाय।
इस पीपल दृढ़ मूल को, शस्त्र असंग दृढ़ ढाय ॥ ३ ॥
छं०—धाम ढूंढना उचित वोही, जहां जाकरफिर नहीं आतेहैं।
उस आदि पुरुष से मिलना बस, जो अव्यय वृत्ति बढ़ातेहैं॥

जो मान मोह ममता त्यागें, और संग छमा‌र्जन पाते हैं।
सदा आत्मा में रहते, और इच्छा सकल नवाते हैं।
दुःख सुक्ख आदिक द्वंदों को, तिनका तोड़ बगाते हैं।
वह बुद्धिमान उस नाश न होने, वाले धाम को पाते हैं। ५।
नहीं सूर्य्य चंद्रमा अग्नी जिसको, निज बल कर चमकाते हैं।
जहां जाय कर नहीं लौटे, वह अपना धाम बताते हैं॥६॥

गान क्षेपक

घड़ी पल प्रहर सब बीते खतम पर है ज़माना।
गया जो वक्त है भाई नहीं फिर हाथ आना॥
पियारे ज़िन्दगी दो दिन की, इसपै क्या गुमाना।
विकट मारग पै चलना है, बताओ क्या उठाना।
न दुर्योधन न दुःशासन, काल का कहां ठिकाना॥
सभा में द्रौपदी के संग, जिन्हों ने जुल्म ठाना।
न द्रोणाचार्य से गुरु हैं, जिन्हें आये पढ़ाना।
न अर्जुन से हैं अब चेले, गुरु पर बाण ताना॥
न गीता ज्ञान सा दूजा, इसमें कोई ज्ञान पाना।
करो उद्धार धर्मों का, हरी सेवक पुराना॥

दोहा-मेरा सनातन अंश यह, जीव लोक में आय।
जीव हुआ विचरे यहीं, नाना रूप धराय॥
मन समेत छः इन्द्रियां, प्रकृती करै निवास।
इन को खींचे है सदा, करता इनमें वास॥७॥

छं०-जब जीव देह में आता है, अथवा इसमें से जाता है।
उनको लेकर इस भांति चले, ज्यूं पुष्प सुगन्ध उड़ाता है॥८॥
यही जीव मन में रहकर, विषयों को भोग भुगाता है।
आंखों से सब देखे है, कानों से सुने सुनाता है॥

ध्यान दिलाता हूँ मैं ही मैं ही कराऊं ज्ञान ।
सब वेदों से जानने, जोग मैं ही भगवान ॥
मैं ही चारों वेद का, पूरण जानूं भाव ।
मुझसे ही वेदान्त का, होता प्रकट प्रभाव ॥ १५ ॥

छं०—क्षर अक्षर दो पुरुषों का, यो जग संसार बनाया है ।
क्षरता में सब जीव रहें, अक्षर स्थिर कहलाया है ॥ १६ ॥
और जो उत्तम पुरुष हैं सो, परमात्मा ईश्वर गाया है ।
अव्यय तीनों लोकों में व्यापक, जिसने सब को पोषाया है ॥ १७ ॥
मैं अक्षर से भी उत्तम, और क्षर से परे कहाता हूं ।
लोक वेद में प्रकट योंही, पुरुषोत्तम गाया जाता हूं ॥ १८ ॥
जिन विद्वानों को भारत, मैं ही पुरुषोत्तम भाता हूं ।
सब भावोंसे वह भजते, करके पूजा जाता हूं ॥ १९ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योग-शास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे स्वालुबंध पद्यात्मक पुरुषोत्तम योगोनाम पञ्चदशो ऽध्याय ॥ १५ ॥

—:०:—

१६—अध्याय

दैवासुरसंपत्ति-योग

दोहा—इस षोडश अध्यायमें, अर्जुन कूं बतलाय ।
दुख-मार्गों की भेद को, यों अंथम दरशाय ॥

छंद—जो संशय बिन रहे सदा, नहीं मृत्यु उससे डरता है ।
गुरु शास्त्र का कहना माने, झगड़ोंमें नहीं पड़ता है ॥
झूंठ कपट छल निन्दा त्यागे, पर गुण दोष बिसरता है ।
सदा ध्यान में लगा हुआ, जब पुरुषोत्तम पर मरता है ॥

अन्न धन धरती धेनु दान, जो मान के विप्र भिखारी हैं।
सभी इन्द्रियों को रोकैं, नहीं भोगों पर संभलाते हैं॥
वेद शास्त्र अनुसार यज्ञ, करते हैं और कराते हैं।
वेद पुराण शास्त्र पढ़ते, और दिलसे शिष्य पढ़ाते हैं॥
दोहा—कायक वाचक मानसिक, तप करते हैं तात।
सीदे सादे से रहैं, नहीं घमावैं बात॥ १॥
छंद—कभी नहीं हिंसा करते, ना मनसे दुःख पहुंचावैं हैं।
सदा सत्य को ग्रहण करैं, ना झूंठी बात बनावैं हैं॥
गाली भी खावे मुंहपर, पर क्रोध नहीं कुछ लावैं हैं।
कर्मों का फल त्याग करैं, ना संगत बुरी लगावैं हैं॥
शान्ति चित्त हो विचरैं हैं, ना मनमें ग्लानी लावैं हैं।
ना इनकी उनकी कह कर, पुरुषों को लड़वावैं हैं॥
जीव मात्र पर दया करैं, दुखमें जा दुख बटवावैं हैं।
विषय भोग सब मिलते हों पर लालचमें नहीं आवैं हैं॥
दोहा— कोमलता उनमें बसे, बोलैं मीठे बैन।
कुकरम से लज्जा किये, करलें नीचे नैन॥
चञ्चलता सब त्यागदें, हो गम्भीर स्वभाव।
सब पुरुषों से एकसा, रखते हैं बरताव॥ २॥
छंद-जिनका होय प्रभाव भारी, और मुख पर तेज चमकता हो।
मार्तण्ड नभमें जैसे, निज किरणों सहित दमकता हो॥
क्षमा करैं सब के ऊपर, शत्रू भी चाहे चलकता हो।
विपत काल में धीरज धरते, वैसाही आप झलकता हो॥
स्नान ध्यान से हो पवित्र, नहीं पल्ला तलक भिड़ावे जो।
स्वयं पाक करके हाथों से, भगवत भोग लगावे जो॥
घृणा किसी से नहीं करते, और बैर भी नहीं बढ़ावै जो।
बड़ा समझ कर अपने को, अभिमान न उर में लावे जो॥

दोहा—ऐसे ये छब्बीस गुण, दैवी सम्पति जान।
भारत जिस में यह मिलें, उसे हमारा मान ॥ ३ ॥

छं०—धोखा देकर लोगों को, जो अपना काम बनाते हैं।
धन जाती गुण वरण आश्रम, का घमण्ड दिखलाते हैं॥
और ब्राह्मण साधू के, आगे नहीं शीश नवाते हैं।
निन्दा करैं बहुत उनकी, और खोटे शब्द सुनाते हैं॥
सदा क्रोध से भरे रहैं, और जीवों को दुखियाते हैं।
मूरखपन के काम करैं, और उलटी बुलटी गाते हैं॥
ऐसे जीव आसुरी संपति, में आकर जन्माते हैं।
हे पारथ ये सत्य जान, यह मेरा धाम न पाते हैं ॥ ४ ॥

दोहा—आसुरी संपति में बंधे, दैवी से छुट जाय।
निश्चय करके कहूं मैं, इस में संशय नाय ॥
दैवी संपति के विषय, तुम जन्मे हो आय।
पाण्डव इस से सोच क्या, भवसागर तरजाय ॥ ५ ॥

छं०—इस संसार में दो सृष्टी, सब जीवों को जन्माती हैं।
एक आसुरी होती है, दूसरी दैवी कहलाती हैं॥
दैवी को विस्तृत कहकर, आसुरी बताई जाती है।
हे पृथा पुत्र हित से सुनिये, येही तो नर्क भुगाती है ॥ ६ ॥
आसुरी लोग प्रवृत्ती और, निवृत्ती को नहीं जाने हैं।
सत्याचार और शुद्धी को, किसी भांति नहीं माने हैं ॥ ७ ॥
दो बिन अधार झूठा जगको, कहके ना ईश्वर माने हैं।
नर नारी संयोग से बस, उत्पत्ती जग की ताने हैं॥

दोहा—कामदेव इस जगत का, केवल सिरजन हार।
इस बिन कोई दूसरा, करते नहीं विचार ॥ ८ ॥

छं०—मनमलीन कम समझ, और उपकार रहित अत्याचारी।
जगत नाशमें लगे हुवे, इस नातसे दृढ़ होकर भारी ॥ ९ ॥

दुष्पूरित इच्छायें करते, दंभ मान मद विस्तारी ।
मूरखता से करें दुराग्रह, खोटे कर्म करें भारी ॥ १० ॥
चिन्ता अतुल प्रलय तक की, लेकर मन में छिपाते हैं ।
काम भोग से उत्तम नहीं, कुछ निश्चय कर बतलाते हैं ॥११॥
सैकड़ों आशाओं की फांसी, करके गला बंधाते हैं ।
काम क्रोध दोनों के पीछे, पड़के वयस गंवाते हैं ॥
दोहा—विषय-भोगने के लिये, बहुत करैं अन्याय ।
जैसे उनको धन मिले वैसा करैं उपाय ॥ १२ ॥
छं०—यह धन आज मिला मुझको और यह भी इच्छा पाऊंगा ।
यह धन मेरा सारा है, फिर इतना और कमाऊंगा ॥ १३ ॥
मैंने ये शत्रु मार दिये, बाकी को और नसाऊंगा ।
मैं भोगी बलवान सुखी, ईश्वर मैं सिद्ध कहाऊंगा ॥ १४ ॥
मैं कुलीन हूं मालदार, और यज्ञ रचाने वाला हूं ।
मेरी बराबर कोई नहीं, आनंद उड़ाने वाला हूं ॥
मूरखता से कहता है यह, मैं ही खिलाने दाता हूं ।
बड़े बड़ाई मैं करूँ, मैं ताल सुनाने वाला हूं ॥ १५ ॥
दोहा—मोह जाल में फंसे हैं, चिन्ता नहीं नसाय ।
डूबे काम और भोग में, घोर नर्क में जाय ॥ १६ ॥
छं०—बड़ा समझते अपने को, नहीं झुककर शीश नवाते हैं ।
धन अहंकार के लालच में, रहते निश दिन मद माते हैं ॥
विधी पूर्वक यज्ञ करैं नहीं, और पाखण्ड दिखाते हैं ।
नाम मात्र के यज्ञ रचैं, विप्रों से टहल कराते हैं ॥ १७ ॥
अहंकार बल दर्प काम, और क्रोध जिन्हों को भाते हैं ।
सत पुरुषों की निन्दा कर, सब मेरा नाम घटाते हैं ॥
नहीं देखते अपने में, ना दूसरी देह लखाते हैं ।
मुझसे द्वेष करें केवल, जगनारायण तन जलाते हैं ॥ १८ ॥

गान क्षेपक

बीबी कामनारी तू हो कामदेव की रानी (टेक)
गुस्सा तेरा भाई भतीजा, और ममता दौरानी ।
लालच तेरा प्यारा देवर जब से आ तू ब्यानी ॥ १ ॥
मांस हो मदिरा खाना नाची–रण्डी भाजी नानी ।
जुआ है तेरा सगा भनेजा, बहुत तेरी बेईमानी ॥ २ ॥
झूंठ बोलना जेठ तिहारो, दूरपा तेरी जिठानी ।
दम्भ पाखण्ड हैं प्यारे बेटे, चोर नगर रजधानी ॥ ३ ॥
हिंसा तेरी खास लड़कनी, और धोखा दिल जानी ।
अकनी कहीं बची कई धारी, ये सब की खाखानी ॥ ४ ॥

दोहा— क्रूर अशुभ द्वेषी मेरे, नीच पुरुष संसार ॥
सब को राक्षस योनिमें, डालूं बारंबार ॥ १९ ॥

छं०-आसुरी योनी में पड़ते, बहु मूढ जन्म जन्माते हैं ।
कौन्तेय ना मिलूं उन्हें, वह अन्त नीच गति पाते हैं ॥ २० ॥
तीन भांति के नर्क द्वार, यह आत्म नाश कहलाते हैं ।
काम क्रोध और लोभ त्यागदे, इसी लिये बतलाते हैं ॥ २१ ॥
इन तीनों नर्क द्वार से अर्जुन, जो प्राणी छुटजाता है ।
फिर भला आत्मा का अपने, करने को काम चलाता है ॥ २२ ॥
जब साधन करते करते वो, पूरण सिद्धी पाता है ।
शान्त रूप हो जाता है, फिर मुझ में आय समाता है ॥ २३ ॥

दोहा–करने ना करने विषय, शास्त्रहि एक प्रमान ।
शास्त्र विधी यों जान कर, कर्म करो हर आन ॥ २४ ॥

गान क्षेपक

कंगाल और धनी को मरना ज़रूर होगा ॥ टेक ॥
जिस काम को तू आया करना ज़रूर होगा ॥ १ ॥

करते हुकुमउदूली फिर करो फ़र्ज़ है इतनी ।
क्या फ़ायदा है जब सब मरना ज़रूर होगा ॥ २ ॥
जिनके लिये तू इतना जाँ पे खेलता है ।
महशर में तुझ को उन से लड़ना ज़रूर होगा ॥ ३ ॥
मक्कारियां ये तेरी हरगिज़ नहीं चलेंगी ।
बरबाद जब करेगा मरना ज़रूर होगा ॥ ४ ॥
कुछ फ़िक्र आक़बत का अब बेवकूफ़ करले ।
रोना तुझे ही एक दिन वरना ज़रूर होगा ॥ ५ ॥
जितने मज़े ये तुझ को सर से उठा रहे हैं ।
मक़बरे में तुझ को इन से पड़ना ज़रूर होगा ॥ ६ ॥
कर याद उन दिनों को लिपटा था पीब खूं में ।
ले नाम उस हरी का तरना ज़रूर होगा ॥ ७ ॥
उसकी दयालुता का क्या अन्त है गा शम्सी
किश्ती लगी खड़ी है चढ़ना ज़रूर होगा ॥ ८ ॥

इति श्री मद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योग शास्त्रे श्री कृष्णार्जुन संवादे दयालु छन्द पद्यात्मक दैवासुर संपत्ति विभागोनाम षोडशो अध्यायः ॥ १६ ॥

१७—अध्याय

श्रद्धात्रय विभाग-योग

अर्जुन उवाच

गाना क्षेपक

करो तो इतनी दया दयामय, छुटे शरन नाथ हाथ मेरा ।
यहां करूं तो शरमकी आके, गुनाहोंने मुझको आन घेरा ॥१॥
कबीलेदारी की क़ैद भोगी, जुदा मैं जब इनके पीछे रोगी।
है लोभनेभी बनाया जोगी, कराया दर २ का मुझसे फेरा ॥२॥

है गांठ पापोंकी सरपै भारी, मैं चलने से हो रहा हूं आरी॥
ज़रा कृपा जानलो मुरारी, न गर्क होजाय बेड़ा मेरा ॥ ३ ॥
होजाय जीनेसे सेरी जिसदम, नज़र पड़े मुखपर तूही हरदम।
सुनूं मैं पाज़ेब की छमाछम, लगा हो बंसी पे कान मेरा ॥४॥
नज़ारा इतना मुझे दिखैजो, हों बंद आंखें हुजूर दिखैजो।
ख़याल तेरा बंधा हुआ हो, पड़ा हूं चरणों में हो बसेरा ॥५॥
जो कृपाकी रजमैंहो मेरा मरना, तो स्वर्गमें जाके क्याहै करना।
यहींका मरनाहै सचका तरना, यहीं मुबारिक क़दम है तेरा ॥६॥
यहींका ज़र्राहै असली गौहर, यहींकी मिट्टीमें है ये जौहर।
जोसरगया आनाहै सिकन्दर, लियाहै था उसने धाम मेरा ॥७॥
कमीना चाहि वे सब शाही, गदाई है वस वो बादशाही।
जो चिमटे जिसस उन्होंने पाई, पियारे लेलेके नाम तेरा ॥८॥
न चाहूं दिल्कुल कहीं गवारा, मगर मिले मुझको ये सहारा।
ज़मीन दोज़ख पे हो गुज़ारा, रहूं मैं उसपे हो काम मेरा ॥९॥
कहीं खुदाई बिगड़ न जाये, ये बिरद तेरा उखड़ न जाये।
सदा लगा करके शर्म गाये, भजन यशोदा के लाल तेरा ॥ १० ॥

दोहा—शास्त्र विधि जो त्याग करी, श्रद्धावे युक्ति थाय ।
तिनकी निष्ठा कौनहै, बल रज सत के मांय ॥ १ ॥

श्री भगवान उवाच

छं०- तीन भांति की श्रद्धा, तीनों के स्वभावसे आती है।
सात्विकि राजसि और तामसी, गुन ये नाम रखाती है ॥ २ ॥
श्रद्धा तो भारत सबकी जन, उर अनुसार बताती है ।
श्रद्धा रूप नरको श्रद्धा ज्यों, होती त्यों बनजाती है ॥ ३ ॥
सतो गुणी श्रद्धावाले सुर, पूजन कर हुलसाते हैं ।
यक्ष राक्षसों के पूजन को, राजसलोग उमहाते हैं ॥

और तामसी जन सारे, जो पूजन करना चाहते हैं।
जाय रात को मरघटमें, वो भूत और प्रेत जगाते हैं ॥ ४ ॥

दोहा—जो जन शास्त्र विरुद्ध हैं, तपते हैं तप घोर।
अहंकार पाखण्ड से, काम राग बल जोर ॥ ५ ॥

छं०—पांच तत्व तनमें रहने, प्राणों को खूब दुखाते हैं।
और मैंभी जो रहूं देहमें, मुझको भी कलपाते हैं॥
हे अर्जुन यह सत्य जान, जैसा हम तुम्हें बताते हैं।
वो आसुरी निश्चय वाले हैं, और राक्षस नाम धराते हैं ॥ ६ ॥
खाने पीने भी सब को वह, तीन भांति के भाते हैं।
वैसे ही तप दान यज्ञ सुन, उन के भेद सुनाते हैं ॥ ७ ॥
बल आयु उत्साह प्रीति सुख जो आरोग्य कराते हैं।
चिकने रसके स्थिर प्यारे, सात्विक भोजन पाते हैं ॥ ८ ॥

दोहा—कड़वा खट्टा चरपरा, दाहक रूक्ष लवीन।
रोग शोक दुख दे गरम, रजो भोग चित लीन ॥ ९ ॥

छं०-जिसे पहर रक्खे बीता, दुर्गन्धित स्वाद गया सारा।
बासी झूंठा और अशुद्ध यह तामस भोजन है प्यारा ॥१०॥
मुझ को ही यज्ञ करना है, ऐसा जिसने मन में धारा।
फलकी इच्छा नहीं करता और विधिवत यज्ञ करे सारा॥
ऐसा यज्ञ सात्वकी होता, ये मत है अर्जुन म्हारा।
हे भरतश्रेष्ठ जो फलकी इच्छा, करके यज्ञ रचैं न्यारा ॥११॥
और पाखण्ड दिखावे को, करता धोखा देने वारा।
राजस यज्ञ उसे जानो, सुन अब तामस कहुँ विस्तारा ॥१२॥

दोहा—मन्त्र विधि और दक्षिणा, करके जो यग हीन।
उचित अन्न श्रद्धा बिना, सो यग तामस चीन ॥ १३ ॥

छं०—देव ब्राह्मण का आदर से, पूजन करना अच्छा है।
गुरु प्राज्ञ की पूजा सेवा, पोषण करना अच्छा है।।

शुद्ध सरलता ब्रह्मचर्य नहीं, हिंसा करना अच्छा है।
यो शारीरिक तप कहलाता, सुनना करना अच्छा है ॥ १४॥
दुःख न देने वाला सच्चा, वचन सुनाना अच्छा है।
हित का प्यारा और न कच्चा, वचन सुनाना अच्छा है ॥
वेदशास्त्र पढ़ने को सच्चा, वचन सुनाना अच्छा है।
यो वाणी का तप है अच्छा, वचन सुनाना अच्छा है ॥१५॥
दोहा—मन प्रसन्न और सौम्यता, मौन ही मन ठहराय।
भाव शुद्ध रखता सदा, मानस तप कहलाय ॥ १६ ॥
छंद—फलकी इच्छा त्याग करे, और श्रद्धा परम बनाता है।
चित्त एकाग्र करे अपना, और दुख सुख ना हो भोला है ॥
ऐसे तीन भांति के तप, करता और पुजवाता है।
सो सात्विक तप कहलाता है, जो करता है सो पाता है ॥१७॥
जो पाखण्ड दिखाने को, और मान बड़ाई पाने को।
वो रजोगुणी तप होता है, जो करें है पूजे जाने को ॥ १८॥
विश्वास करें मूरखता से, तप करते तन दुखियाने को।
सो तमोगुणी तप कहलावे, जो औरों के मरजाने को ॥१९॥
दोहा—उचित समय जन पात्रपर, बिन उपकारी दान।
यह समझे देना मुझे, सात्विक दान सो जान ॥ २०॥
छं०—जो प्रत्युपकारको देता है, और रखता है फलकी आशा।
रजोगुणी है दान वही, जो देता है दुखियाता सा ॥२१॥
खोटे समय पात्र खोटे, खोटे जन को उतराता सा।
वह दान तमोगुणी होता है, जो देता है झिड़काता सा ॥२२॥
एक ओ३म् दूजा तत है, और तीजा सत कहलाया है।
इन तीन भांति के ब्रह्म रूप, को वेदों ने बतलाया है ॥
इसी लिये तो वेद ब्राह्मण, यज्ञ प्रथम उपजाया है।
इन ही के द्वारा सृष्टी का, सारा चक्र चलाया है ॥ २३ ॥

दोहा—अतः वादियों के पंथी, सदा शास्त्र अनुसार ।
कर्म यज्ञ तप दान को, किया ओ३म् उच्चार ॥ २४ ॥

छं०—जिनको मुक्ति की इच्छा है, नहीं और कोई फल चाहते हैं,
वो लोग यज्ञ तप दान आदि में, तत कहकर उच्चराते हैं॥२५॥
साधु और सत भाव में अर्जुन, सत यह नाम उचाते हैं ।
और श्रेष्ठ कर्मों के भीतर, भी सत नाम पढ़ाते हैं ॥ २६ ॥
यज्ञ दान तप में स्थित, रहने को सत बतलाते हैं ।
और ईश्वर के निमित्त, कामों के सत कहाते हैं ॥ २७ ॥
जो श्रद्धा के बिन दान तप, या जो कुछ करवाते हैं ।
सो असत कर्म जीते मरते, दोनों में काम न आते हैं ॥

दोहा—यों सत्रह अध्याय का, अर्जुन कहा ज्ञान ।
तेरे हित ही के लिये, कीना तत्त्व बखान ॥

इति श्री मद्भगवत गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योग
शास्त्रे श्री कृष्णार्जुन संवादे दयालु छन्द पद्यात्मक
श्रद्धात्रयविभागयोगोनाम सप्तदशो अध्यायः ॥१७॥

१८—अध्याय

मोक्षसंन्यास-योग

अर्जुन उवाच

दोहा—बड़ी भुजा वाले प्रभु, हृषीकेश भगवान ।
केशि हरण है आप को, मुझपर कृपा महान ॥
त्याग और संन्यास का, दीजे तत्व बताय ।
अलग २ मीमांसा, चाहता हूं यदुराय ॥ १ ॥

श्री भगवान उवाच

छं०—जो इच्छा से हैं कर्म त्याग, करते नहीं मन में लाते हैं ।
संन्यासी का धर्म यो ही, संन्यास वही बतलाते हैं ॥

और कर्म करने वाले पर, फल नहीं उसका पाते हैं ।
तत्त्व वेत्ता ऐसे ही, कर्मों को त्याग बताते हैं ॥ २ ॥
कुछ पंडित यह कहते हैं, दूषित कर्मों को नहीं करें ।
कुछ कहते हैं यज्ञ दान, तप आदि कर्म वे नहीं तजें ॥ ३ ॥
हे भरत श्रेष्ठ इस त्याग में जो, मेरा निश्चय सुन नहीं टरें ।
तीन भांति का त्याग कहा, नर पुरुष सिंह उसमें विचरें ॥ ४ ॥
दोहा—यज्ञ दानतप कर्म का, कभी न करिये त्याग ।
पंडित जनभी शुद्ध हों, करें दान तप याग ॥ ५ ॥
ममता और फल त्याग कर, ये सब कर्म करें ।
उत्तम निश्चल मत मेरा, पारथ करे खरे ॥ ६ ॥
छं०—वर्णाश्रमी नित्य कर्मों का, त्याग उचित नहीं कहलाता ।
मूरखता से छोड़ना उसका, तमो गुणी पाया जाता ॥ ७ ॥
जो कर्मको दुख दाता समझे, और तन दुख भयसे मुरझाता ।
रजो गुणी त्यागनहै वो, और फल भी उसका नहींपाता ॥ ८ ॥
यह नियमित कर्म अवश्य करना, ये समझ जो कर्म बनाते हैं ।
फल संग त्याग करते अर्जुन, वो सात्विक त्याग कहाते हैं ॥ ९ ॥
बुद्धिमान निशंक सात्वकी, जो त्यागी कहलाते हैं ।
ना बुरे कर्म से घृणा करें, ना अच्छे में रत जाते हैं ॥ १० ॥
दोहा—तन धारी सकल नहीं, सर्व कर्म दे त्याग ।
कर्मों का फल छोड़दे, सो त्यागी बेलाग ॥ ११ ॥
बुरा भला दोनों मिले, कर्मों के फल तीन ।
संगी भोगे मरन पै, संन्यासी नहीं चीन ॥ १२ ॥
छं०—कारण पांच महा बाहू, ये सब कर्मों की सिद्धी को ।
सांख्य शास्त्र सिद्धान्त कहूं, मैं सुनो लगाकर बुद्धी को ॥ १३ ॥
अधिष्ठान अर्थात देह, जो रखता शुद्धि अशुद्धी को ।
दूजा कर्ता चेतन है, पर अहंकार की वृद्धी को ॥

पांच इन्द्रियां दसवां मन, करण कारण नाम धराते हैं ।
पांच भाँति की वायु जिनसे, स्वांस ये आते जाते हैं ॥
जैसे सूरज आदि देवता, तन में ही रहे आते हैं ।
सोही देव कहाते हैं, जो इन्द्रिन को चलवाते हैं ॥ १४ ॥

दोहा—तन मन बानी से पुरुष, जितने काम करैं ।
बुरे भले सब काम में, ये पांचों बिचरैं ॥ १५ ॥

छं०—सारे कर्म उक्त पांचों, कारण से प्राणी करते हैं ।
इस बात के निश्चित होजाने, परभी जो मूढ़ बिचरते हैं ॥
अपने शुद्ध आत्मा को, कर्मों का करता धरते हैं ।
वो दुर्बुद्धी नहीं देखते हैं, दुख सुख को बिरथा करते हैं॥१६॥
जिस के मन में करता हूं मैं, ऐसा विचार नहीं आता है ।
और जो अपनी बुद्धी को, कर्मोंमें नहीं लिपटाता है ॥
यद्यपि मारे इन लोगों को, तौ भी नहीं हत्या पाता है ।
और उसे बंधन में भी नहीं, कोई कर्म फंसाता है ॥१७॥

दो०—ज्ञान ज्ञेय ज्ञाता यही, तीन कर्म संचार ।
करण कर्म करता इन्हें, जानो कर्म प्रकार ॥१८॥

छं०—ज्ञान कर्म करता तीनों का, त्रिगुणी भेद बताते हैं ।
ठीक २ गुण सांख्य शास्त्र में, ऐसे गाये जाते हैं ॥१९॥
जो सब जीवों में एक भाव, अविनाशी हर लखियाते हैं ।
भिन्नों में अभिन्न देखे, वो सात्विकी ज्ञान जनाते हैं ॥२०॥
जो सब जीवों में भेद युक्त, और पृथक् २ पहिचानते हैं ।
उस न्यारेपन के ज्ञानकोही, सब राजस ज्ञान बखानतेहैं ॥२१॥
जो एक कार्य में मोहित हैं, फलवान् उसे ही मानते हैं ।
बस तुच्छ निरर्थी तत्त्वरहित, को तामस ज्ञानी ठानतेहैं ॥२२॥

दोहा—नित्य नियम से कर्म जो, करते हैं विद्वान् ।
और जिन कर्मों के विषय, नहीं आसक्ती भान ॥

दोहा—राग द्वेष मिटाय कर, फल की इच्छा त्याग ।
करते हैं जो कर्म को, सोई सात्वकी कर्मयोग ॥ २३ ॥

छं०—जो फलकी इच्छा से करते, फिर अहङ्कार दिखलाते हैं ।
राजस कर्म वोही तो है, जिस में अति कष्ट उठाते हैं ॥२४॥
जिसके करने से पहिले तो, नहीं बुरा भला जंचवाते हैं ।
जब धनका नाश अधिक होता, तब रोते हैं पछताते हैं ॥
और यह भी नहीं सोचते हैं, औरों को दुःख हो जावेगा ।
सामर्थ नहीं देखें अपनी, ये बिगड़े या बनि आवेगा ॥
जो करना नहीं जानता है, कर मूरखता दिखलावेगा ।
वो तामस कर्म कहावेगा, और नर्क बीच पहुंचावेगा ॥ २५ ॥

दोहा—अहंकार रक्खे नहीं, रहताहै बेलाग ।
धीर धरे कारज करे, निश दिन खेले फाग ॥
सिद्धी और असिद्धि में, रहवे एक समान ।
सतोगुणी करता वही, अर्जुन निश्चय जान ॥ २६ ॥

छं०—विषय वासना में रहता, और कर्मोंका फल चाहता है ।
सब जीवों को खिजवावे, और लालच में आजाता है ॥
शौच नहीं रखता कुछभी, नित हर्ष और शोक मनाता है ।
ऐसा करता ऐ अर्जुन जो, वह रजोगुणी कहलाता है ॥२७ ॥
सुध बुध बिसराने वाला, जो कपट जाल फैलाता है ।
चुगल खोर हो आलकसी, और करके फिर पछताता है ॥
अलसेट करे सब कामों में, टल बुल कर समय गंवाता है ।
यह तमोगुणी करता होता, बस करता है इतराता है ॥ २८॥

दोहा—धीर बुद्धि के गुणों से, तीन भांति के भेद ।
सुनो धनञ्जय ध्यान से, अलग २ बिन खेद ॥ २९ ॥

छं०—जो बुद्धि प्रवृत्ती और निवृत्ती, काज अकाज पिछानतीहै।
भय और अभय बंध मुक्ती को, सात्वकी बुद्धि जानतीहै॥३०॥

धर्म अधर्म करनी अनकरनी, ठीक २ नहीं मानती है।
ये बुद्धी राजस होतीहै, जो राजस जनको ठानती है। ३१।
जो अधर्म को धर्म लखे, सब उलटे अर्थ कराती है।
अंधेरे से ढकी हुई तामस, बुद्धी कहलाती है ॥ ३२ ॥
जो एकाग्र चित्त करने से, धृती नहीं हटाती है।
और मन इन्द्रि प्राण क्रिया, कर नियमित रूप बनाती है॥
दोहा—हे पारथ ऐसी धृती, सात्विक थिरती जान।
इसी धृति का आसरा, लेते हैं विद्वान ॥ ३३ ॥
छं०—हे अर्जुन जो अर्थ धर्म और, काम में धृती लगाती है।
और प्रसंगसे फल चहती सो, राजसि धृति कहलाती है ॥३४॥
जो नींद शोक भय पछतावा, अभिमान नहीं छुड़वाती है।
पारथ सो धृति तामसी है, और मूरख की मित्राती है।३५।
हे भरतर्षभ, अब तीन भांति, के सुख तुमसे बतलाते हैं।
अभ्यास से जिससे हों प्रसन्न, और दुख का अंत कराते हैं॥
जो सुख पहिले विष समान, परिणाम में अमृत लाते हैं।
निज बुद्धि शुद्धसे होते हैं, वो सात्विक सुक्ख कहाते हैं॥३६॥

गान क्षेपक

मेरी हिकमत मैं अर्जुन बंधाये जाऊंगा। (टेक)
कर्म बताऊं, योग दिखाऊं, भक्तिका रस भी चखाये जाऊंगा।१।
बातों में लाऊं, गीता सुनाऊं, दुई सुईको मिटाये जाऊंगा।२।
रथमें बिठाऊं, सन्मुख डटाऊं, घोड़ों पै कोड़े उड़ाये जाऊंगा।३।
दलमें ले जाऊं, बल दिखलाऊं, शकुनी भी तुमको जिताये जाऊंगा।४।
दोहा—जो पहिले अमृत लगे, पीछे गरल समान।
विषय इन्द्रियों से बने, सो सुख राजस जान ॥ ३८ ॥
जो सुख आदि और अन्त में, देता है मुरझाय।
निद्रालस्य प्रमाद से, होय सो तामस गाय ॥ ३९ ॥

छं०–जो वस्तु प्रकृति उपजाती है, नहीं तीन गुणों से जाती है।
भूमि स्वर्ग वहां देवन में भी, ना कोई व्यक्ती पाती है ॥४०॥
ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्र को, परंतपो कहलाती है।
स्वाभाविक उत्पन्न करे फिर, गुण से कार्य्य बटाती है ॥४१॥
बाहर की इन्द्रीरोकैं, और मनको रोक दिखावें हैं।
शास्त्रोक्त व्रत आदि आदि करें, भागीरथी गंगा न्हावें हैं॥
क्षमा करैं सबके ऊपर, और सरल स्वभाव बनाते हैं।
ज्ञान स्वरूप को देखे हैं और भक्ती भाव बढ़ाते हैं।

दोहा–वेद शास्त्र के वचन में, रखते हैं विश्वास।
ब्राह्मण के अन्तः करण, करते सदा निवास ॥४२॥

छं०–करे शूरता जो रण में, और तेज प्रताप दिखाता है।
धीरज धरे हारने पर, फिर गुस्सो कर चढ़ जाता है॥
कभी युद्ध में नहीं भागे, और निज प्रभुता दिखलाता है।
जो दानमें शिरतक देताहै, वो क्षत्री वीर कहाता है ॥४३॥
खेती करैं खिलावैं सबको, ओढ़ें और रखाते हैं।
देश २ को फिरते हैं, नाना व्यापार फैलाते हैं॥
धेनु पालन करने में, तन मन धन सभी लगाते हैं।
गोदान ब्राह्मणों को करते, और चर्णों शीश नवाते हैं॥
बड़े सवेरे उठते हैं, गो माता के ढिग जाते हैं।
नांद शुद्ध करते खानी को, थान पवित्र कराते हैं॥
तन मन धन सब गोमाताके, हितमें स्वयं लगाते हैं।
भी ब्राह्मण की सेवा करते, स्वाभाविक वैश्य कहाते हैं॥

दोहा–सेवा तीनों वर्ण की, करें शूद्र का काम।
ऐसी इसे स्वभाव वश, हो मिलता है ज्ञान ॥४४॥

छं०–अपने २ काम में ही लग, कर नर सिद्धी पाता है।
जिस प्रकार सिद्धी पावे, सुन जो निजकर्म कमाता है ॥४५॥

जो भगवान् सभी जीवों को, स्थूल रूप में लाता है ।
संसार में व्यापक रहता है, कुछ आता है ना जाता है ॥
उस परमात्मा को जो अपने, उचित कर्म से ध्याता है ।
उसे सिद्धि मिलजाती है, और वो आनन्द मनाता है ॥४६॥
उत्तम धर्म पराये से, निज हीन धर्म भी भाता है ।
अपना नियत कर्म करने से, पापों नहीं फंसाता है ॥ ४७ ॥

दोहा-निज स्वाभाविक कर्म जो, दूषित भी कुछ हो ।
तौ भी छोड़े ना कभी, कौन्तेय कहदो ॥
अग्नी में जैसे धुआं, दीपक में ज्यों लो ।
वैसेही सब काम में, दोष होय फिर हो ॥ ४८ ॥

छंद-जिस की बुद्धि किसी वस्तु में, भी ना जाय फंसाती है ।
सब ओरसे मनको जीतलिया, और इच्छा सकल नशाती है॥
नैष्कर्म की सिद्धी तो, वह परम सिद्धी कहलाती है ।
कर्मों के फल त्याग करें, फिर यातों में मिलजाती है ॥ ४९ ॥
वे सिद्धी जब मिलजाती है, जिस भांति ब्रह्ममिलजाती है ।
संक्षेप से कहताहूं अर्जुन, वो अन्तः ज्ञान कराती है ॥ ५० ॥
जिसकी, बुद्धी है विशुद्ध, और मन को धीरज लाती है ।
शब्दादी विषयों को त्यागे, राग द्वेष नशाती है ॥ ५१ ॥

दोहा-बसे सदा एकान्त में, थोड़ा भोजन पाय ।
मन वाणी और देहको, वश में करे बनाय ॥
ध्यान योग अभ्यास से, चित्त लिया है थाम ।
और वैरागी होगया, पहुंचा मेरे धाम ॥ ५२ ॥

छंद-अहङ्कार बल गर्व काम, और क्रोध वो इच्छा त्यागीहै ।
ममतारहित शान्त रहताहै, वरवही ब्रह्मंका भागी है ॥५३॥
सदा ब्रह्म में लीन हुआ, आनन्द रहे अनुरागी है ।
नहीं कांक्षा रखता है, नर शोच करे वैरागी है ॥

सब जीवों में एक भाव, देखे नहीं भेद लखा जाता है ।
पराभक्ति मेरी अर्जुन, ऐसा ही प्राणी पाता है ॥ ५४ ॥
मैं भक्ती से मिलता जो हूं, जो ठीक २ पाजाता है ।
वो तत्व जानले जब मेरा, मुझही में आन समाता है ॥५५॥
दोहा—मेरे सहारे से सदां, सारे कर्म करे ।
नित्य अविनाशी पद विषय, मम कृपया विचरे ॥५६॥
छं०—मेरे लिये सब कामोंको, मनसे तू छोड़ मुझी में आ ।
बुद्धीयोग का पकड़ सहारा, सदांही मुझमें चित्त लगा ॥५७॥
मुझमें चित्त लगा करके, तू कठिन काम सारे करजा ।
मेरी क्रिपा से भवसागर, तू जाग मानले पार हुआ ॥
जो तू अहङ्कार से मेरी, बातों को देगा बितरा ।
तेरा सर्वस्व नाश होजाये; सच २ कहता हूं भ्राता ॥ ५८ ॥
जो तू अहङ्कार के ऊपर, नहीं लड़े यों सोचेगा ।
प्रकृति तुझे लड़ा देगी, तेरा निश्चय सर्वस झूठा ॥ ५९ ॥

ज्ञान दीपक

मल्हार

काहे रहा मुख मोड़ रे अर्जुन ।

पीछे टलेगा बात घटेगी, अब तो लड़ो सर तोड़रे अर्जुन ।
क्षत्री कुलको दाग लगेगा, जो जावे रण छोड़ रे अर्जुन ॥
मारमरे तो वीर कहावे, कायर की क्या होड़रे अर्जुन ।
आया है सो जायगा प्राणी, नाते रहा क्यों जोड़रे अर्जुन ॥
दोहा—कौन्तेय निजभाव से, कर्म उत्पत्ति जान ।
कर्मों ने बांधा तुझे, कहणा मेरा मान ।
जो तू उसको मोहसे, करना देगा त्याग ।
बेवश होकर के करे, कहता हूं मैं साग ॥ ६० ॥

छं०—हे अर्जुन सब प्राणियों के, उर ईश्वर स्वयं बसाताहै।
यंत्र चक्र में सब जीवों को माया से भिरमाता है॥
सब भावों से शरण जाओ, तुम उस को अर्जुन भ्राता है।
धाम सनातन परमशान्ति, कृपा से उसकी पाता है॥ ६२॥
गुह्यों में भी गुह्य ज्ञान ये, मैंने तुम्हें बताया है।
पूर्ण कर विचार इसका, फिरकर जो तुमको भाया है॥६३॥
फिरभी सबसे अधिक गुह्य, सुन वचन मैंने यह गाया है।
प्यारा मित्र मेरा है तू, यों हित उपदेश सुनाया है॥ ६४॥
दोहा—मुझ में चित्त लगायकर, मेरी भक्ति करो।
मेरा ही पूजन करो, चरणों शीश धरो॥
जो तू ऐसा ही करे, पहुंचे मेरे पास।
सत्य प्रतिज्ञा से कहूं, तू मम चित्त विलास॥ ६५॥
छं०—सब इन्द्रिनके धर्म त्याग, और शर्ण हमारी में आओ।
सब पापोंसे छुटवादूं, क्यों शोक समुद्र में डूबाओ॥ ६६॥
इसको तप ना करे कभी, और मेरी बुराई पर आजा।
सेवा से वर्जित रहता, ना ज्ञान उसे बतलायाजा॥ ६७॥
जो इस परम गुह्य भक्ति, और ज्ञान को विधिवत गाताहै।
कथा सुनाता भक्तों को, निश्चित वो मुझमें आता है॥६८॥
जो गीता उपदेश करे, मेरा वो अधिक सुगाता है।
नरभूमी पर कोई नहीं, सम जो मम कथा सुनाता है॥६९॥
दोहा—मेरे तेरे में हुआ, जो धार्मिक सम्बाद।
पढ़ै जो समझूं मैं उसे, ज्ञान यज्ञ परसाद॥ ७०॥
छं०—जो नर श्रद्धा से सुनते, और नहीं ईर्षा लाते हैं।
पापों से नर छूट जांय, और पुण्यलोक में जाते हैं॥ ७१॥
हे अर्जुन क्या ध्यान से लेने, सुनी ये मेरी बातें हैं।
भूल गई क्या धनञ्जय अब क्यों, नहीं आप बताते हैं॥७२॥

अर्जुन उवाच

तेरी दया से गई भूल, अब कृष्ण सुमरती आई है।
तेरा कहना करूंगा मैं, अब शंका सब मिटाई है ॥ १३ ॥

संजय उवाच

छं०—यह महात्मा वासुदेव, अर्जुन की बातें गाई हैं।
रोम खड़े हों सुन करके, अद्भुत अख्यान सुनाई है ॥ १४ ॥
दोहा—योगेश्वर श्री कृष्ण से, साक्षात् प्रसाद।
व्यास कृपा से सुना है, परम गुप्त यह बाद ॥ १५ ॥
छं०—अति पवित्र करने वाली, कृष्णार्जुन की बातें राजा।
अद्भुतही है स्मरण करूं, सो बार बार मन हर्षाता ॥१६॥
बड़ाही अद्भुत रूप कृष्ण का, स्मरण करूं अपरअपारा।
बार २ आनन्द मनाऊं, रहस्याता हूं महाराजा ॥ १७ ॥
दोहा—धनुष धारि अर्जुन जहां, योगेश्वर भगवान।
विजय उन्नति श्री वहां नीति यह मेरो मान ॥१८॥
इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुन संवादे दयालुअन्द पद्यात्मक सर्व संशय
विनाशनो नाम अष्टादशोऽध्यायः समाप्तः ॥ १८ ॥

शुभम्

—:o:—

ज्ञान क्षेपक

विहारी वरमें करहु विहार ॥ टेक ॥
पंच तत्व को लगो बगीचा चौदिशि बोलि दिवार।
चार तुरत चारों वर्णों के चारों कोन मझार ॥ १ ॥
चारो दिशिचारों आश्रम के फाटक खुले किवार।
अर्थ धर्म और काम मोक्ष तरु लहरावैं इच्छार ॥ २ ॥

भाव भक्ति के नाना तरुवर नानाफल दातार ।
मन माली सींचत शुद्धियों ब्रह्मकूप अरघार ॥ ३ ॥
तन्मात्राओं का पंच खम्भा विच आतम दरबार ।
अरमों मिलहु त्रिगुणमन व्यपकर फिर तूहीतू यार ॥४॥
बिहारी तरनें करहु विहार ॥

दोहा-जैसे अर्जुन की विजय, करी कृष्ण भगवान ।
ऐसे ही मन पाप को, विजय करो हरि आन ॥

छं०-गोपालके शरणागत हूं मैं, और सतहू को पहचानगया ।
अंधकार सब गया हृदय का, सत्य ज्ञान होगया नया ॥

॥ श्रीहरिःशान्तिः ३ ॥

ओ३म्

समर्पणम्

अखिलानन्द, असीम, अगोचर, आदि, अनादि अनन्त, स्वयम् ।
अजर, अमर, अव्यक्त, अलेपित, अटल, अचिन्त्य, अशोच, परम् ॥
अति, अत्यन्त, अजाति, अनामय, अव्यभिचारी, आदि सुरम् ।
आज अभिशेष अकलि कविता है, पुरुषोत्तम तव समर्पणम् ॥ १ ॥
प्रभुदयालु की प्रभुदयालु पर, प्रभुदयालुता भई अनुपम ।
प्रभुदयालु की प्रभुदयालु ने, प्रभुदयालुता की कथनम् ॥
प्रभुदयालु अब प्रभुदयालु को, प्रभुदयालु है लो शरणम् ।
आज अभिशेष अकलि कविता है पुरुषोत्तम तव समर्पणम् ॥ २ ॥
सम्वत् उन्निससौ अस्सी है, पौषमास शुक्ला पक्षम् ।
द्वितिया मंगलवार श्रवणमे, वज्रयोग कौलव करणम् ॥
नाथ हाथ गह साथ में रखना, शर्मा की यह विनय परम् ॥
आज अभिशेष अकलि कविता है पुरुषोत्तम तव समर्पणम् ॥

आप ही की आज्ञा है ।

यत्करोषि, यदश्नासि, यज्जुहोषि ददासियत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेयतत्कुरुष्वमदर्पणम् ॥

गीता सु ९ । २७